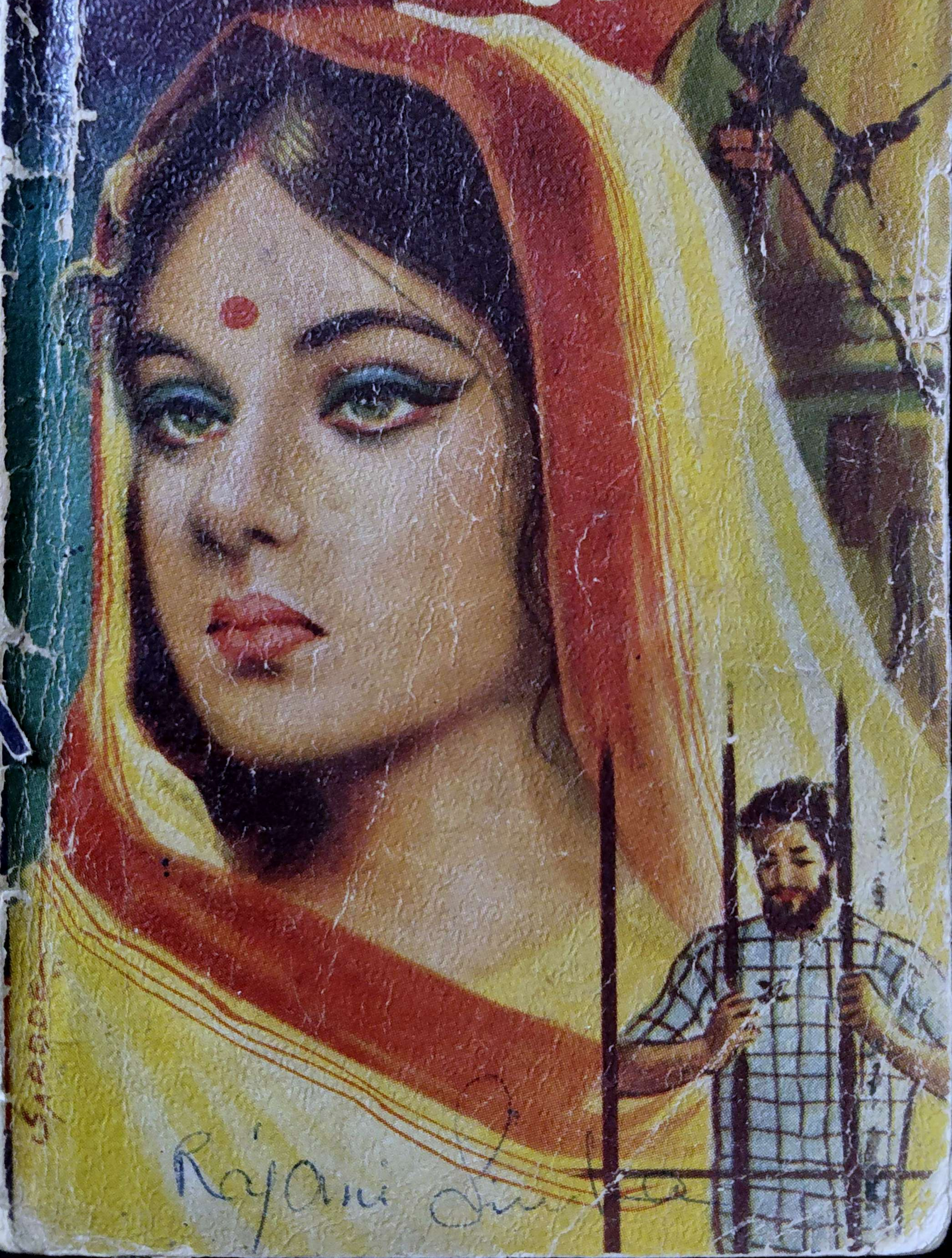
कुशवाहा कान्त

पपीहरा



पपिहरा



मूल्य—चार रुपया

चम्पे की हरी-हरी डाल, मदहोशी से झूमते हुए गुलाब के पौधे, सुगन्धि का हाथ पकड़ कर उड़ती हुई हवा के मस्त झकोरे, पश्चिमी आकाश पर धीरे-धीरे डूबता हुआ सूरज, तालाब की चञ्चल छाती पर नाचती हुई स्वर्णिम किरणें और सीढ़ी पर बैठा पुस्तक पढ़ने में तल्लीन दीपक। दीपक। पचीस वर्ष का शहरी युवक।

आज गांव में आकर यहां की स्वच्छ वायु एवं सुन्दर दृश्यावलि देख विस्मृत-सा हो उठा है। शहर में यह सब कहां? चहकती हुई बुलबुल, कूकती हुई कोयल, उड़ती हुई तितलियां, गुनगुनाते हुए भौंरे— कितना आनन्द है यहां? जी चाहता है उसका कि इसी तालाब के किनारे सीढ़ियों पर बैठा हुआ दिन रात पुस्तकें पढ़ा करे।

वह इस गांव के जमींदार के बेटे का मित्र है। दोनों कई साल तक शहर में साथ-साथ पढ़े हैं। कल ही तो वह आया है यहां और इतनी ही देर में यहां का कोना-कोना जैसे उसकी आंखों में समा गया है। अचानक कोयल की कूक सुनकर दीपक चौंका। ध्यान लगाकर सुना उसने। नहीं। कोयल की कूक नहीं है यह—किसी कोकिल-कण्ठी का स्वर है, जो दक्षिण ओर की अमराई से आ रहा है।

दीपक ने पुस्तक में मन लगाना चाहा, परन्तु स्वर इतना मधुर तथा मादक था कि कान केवल उसे ही सुनना चाहते थे और आंखें गानेवाली की सूरत देखने के लिए बेताब हो उठती थीं।

नैना ये मतवाले री गुइयाँ ये नैना मतवाले
कसक रही है चढ़ी जवानी, करेजवा में पीर उछाले
री गुइयाँ ये नैना मतवाले।

दीपक का दिल धड़कने लगा। यद्यपि गाना देहाती था, फिर भी

गायिका का स्वर उसमें जान फूंक देता था। दीपक ने वैसी सुरीली आवाज नहीं सुनी थी—सिनेमा, थियेटर या रेडियो—कहीं भी नहीं।

एकाएक वह चीख उठा। हाथ से मस्तक पकड़ लिया उसने...ऐसा लगा, जैसे कोई गोली उसके माथे पर आ लगी हो। पीड़ा असह्य हो उठी। हथेली हटा कर देखा तो जरा-सा खून। मगर गोली लगने से तो जरा-सा खून नहीं निकलता, बल्कि धार-सी बह चलती है रक्त की....फिर....।

उसने आँखें खोल दी। पास ही, साफ सीढ़ी पर पत्थर का एक गोल टुकड़ा पड़ा था। तो यह पत्थर किसने उसके मस्तक में खींच मारा? कुछ समझ न सका वह। इधर-उधर देखा, कोई नहीं था। कुछ दूर से उसी मादक गाने की ध्वनि आ रही थी।

वह उठा, चल पड़ा अमराई की ओर। पहुँच कर देखा—हसीन चांद पन्द्रह साल की जवानी लिये खिला था वहाँ। हाथ में गुलेल थी। दीपक ने शहर के बीच वैसी सुन्दरता नहीं देखी थी। उस लड़की के रग-रग में उन्मत्त चंचलता भरी हुई थी। वह आम के एक पेड़ के नीचे खड़ी होकर गा रही थी और गुलेल से पत्थर के टुकड़े चलाकर आम तोड़ रही थी।

बदन पर मैली-सी सलवार और कुछ फटी-कुर्ती थी। सर पर की ओढ़नी उसने जमीन पर रख दी थी, जिसमें दस-बीस आम के टिकोरे दिखाई पड़ रहे थे। कुर्ती के ऊपर से कुछ-कुछ उभरे हुए वक्ष उस अगम कलाकार की कला की याद दिला रहे थे।

धीरे-धीरे दीपक उसके सामने आ खड़ा हुआ। लड़की ने उसकी ओर आश्चर्य से देखा। गाना बन्द कर दिया उसने।

सीधी-सादी आवाज में उसने पूछा—'मेरा गाना सुनने आये हो क्या।'

'नहीं...' दीपक ने थोड़े में कहा।

'क्यों?...' लड़की उससे इस तरह बोली, जैसे उसका बहुत दिनों का परिचय हो—'मेरा गाना तुम्हें पसन्द नहीं आया क्या?

रसूल भैया कहते हैं कि तू गाती नहीं, कूकती है, तेरी आवाज बड़ी हसीन है...क्यों, कैसी है मेरी आवाज ?....'

'बड़ी मधुर ?...'

'कोई दूसरा गाना सुनाऊँ तुम्हें ?...'

'मैं गाना सुनने नहीं आया...'

'तो ?....'

'यह देखो !...' दीपक ने अपने मस्तक का छोटा-सा घाव उसे दिखाया।

देखकर उसका मुख उतर गया, जैसे चमकते चांद पर बादल का एक टुकड़ा आ पड़ा हो।

धीरे से बोली वह—'ओह ! मेरी गुलेल तुम्हें जा लगी !....सच जानो ! मैंने जान-बूझकर नहीं चलाई थी...मैं तो आम तोड़ रही थी यहाँ...'

'मगर जरा इधर-उधर देखकर गुलेल चलाया करो...' बोला दीपक—'नहीं तो एक दिन किसी की जान ले लोगी तुम...'

'खुदा की कसम ! किसी की जान लेकर क्या करूँगी मैं ?'—अजीब अदा से मुस्कराकर बोली वह—'एक अपनी ही जान मेरे लिए वजनी हो रही है....'

लड़की की आँखें दीपक की आँखों से मिलीं तो उसका कलेजा सनसना उठा। दीपक उसकी ओर एकटक देख रहा था। उन आँखों का तीर सीधे उसके कलेजे तक पैठ गया। उसने नजरें नीची कर ली। मुख पर लालिमा छा गई।

'यह लो अपनी कंकड़ी'—दीपक ने पत्थर की कंकड़ी उसकी ओर बढ़ायी।

लड़की ने हथेली फैला दी, दीपक उस पर कंकड़ी रखकर उल्टे पांव लौट पड़ा तालाब की ओर, जहाँ उसकी पुस्तक अकेली पड़ी हुई थी।

तालाब के किनारे आकर दीपक ने अपने मस्तक का रक्त धोया, फिर सीढ़ी पर बैठकर पुस्तक पढ़ने लगा। वह उस अल्हड़ लड़की के विषय में अधिक सोचना नहीं चाहता था।

अंग्रेजी का कोई उपन्यास था वह, जिसे दीपक पढ़ रहा था। कथानक की रोचकता में वह शीघ्र ही बहने लगा।

चौंका वह तब, जब उसके कंधे पर किसी की मुलायम हथेली का भार पड़ा। सर घुमाकर देखा उसने।

वही लड़की थी, चुपचाप उसके सामने खड़ी।

'क्या है ?'....दीपक ने पूछा।

'यह लो !....' लड़की ने पत्थर का एक बड़ा-सा टुकड़ा दीपक के आगे रख दिया।

'इसे क्या करूँगा मैं....'

'इसे लेकर तुम भी मेरे माथे पर मार लो'...उसने कहा—'तुम्हारा बदला पूरा हो जाय....तुम रूठ गये हो न ?'

'नहीं तो ! मैं रूठा नहीं हूँ...' बोला दीपक।

'तब वहाँ से तुनककर क्यों चले आये ?'

'वहाँ पर रुककर ही क्या करता ?'

'तो तुम वहाँ गये ही क्यों थे ?'....पूछा उसने।

'तुम्हारी कंकड़ी तुम्हें लौटाने...' दीपक ने कहा।

'यह क्यों नहीं कहते कि ताना देने गये थे....' बोली वह—'जरा-सी चोट क्या लगी, रूठना-सिसकना शुरू कर दिया...अच्छे मर्द हो जी तुम...'

'........' कुछ बोला नहीं दीपक। चुपचाप पुस्तक उठाकर पुनः पढ़ने लगा। वह बिना किसी हिचक के दीपक के पास बैठ गई। बोली—'खुदा जानता है, मैंने जान-बूझकर तुम्हें नहीं सताया...मुझे माफ कर दो...बोलो माफ किया तुमने ?'

'हाँ...'

'तुम तो बहुत कम बोलते हो जो ! हर बात का जरा-सा जवाब देकर चुप रह जाते हो...लो मैं अपनी गुलेल तोड़ डालती हूँ, ताकि फिर किसी का सर न फूटे....अब तो खुश होगे तुम ?'

उसने गुलेल दोनों हाथों से पकड़कर तोड़ना चाहा। दीपक ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया। उस पकड़ से उसके कलेजे की एक-एक धड़कन झनझना उठी। वह मादक नेत्रों से देखती ही रह गई दीपक की ओर।

'इसे क्यों तोड़ती हो ?'—दीपक ने पूछा।

'तुम रूठ जो गये हो....' वह बोली।

'मैं रूठा नहीं....'

'अच्छा जी !' जरा-सा हँसकर उसने कहा—'फिर इतना बन-ठन क्यों रहे थे ?....आम खाओगे ?...दूँ....'

'नहीं ! मैं कच्चा आम नहीं खा सकता....' बोला दीपक।

'क्यों...'

'दांत खट्टे हो जाते हैं !...'

'वाह ! जब खुद तुम्हारे दांत खट्टे हो जाते हैं तो दूसरों के दांत क्या खट्टे करोगे तुम ?...यह कौन-सी किताब है ? गाने की है क्या ?....'

'नहीं कहानी की !....'

'मुझे भी कहानी सुनाओ....' सरल भाव से उसने कहा।

उस लड़की की सरलता से दीपक प्रभावित होता जा रहा था। देखने में वह किसी मुसलमान की लड़की जान पड़ती थी।

'तुम कहानी नहीं सुनाओगे मुझे ?....' दीपक को चुप देखकर उसने कहा—'अच्छा मत सुनाओ...तुम्हारी किताब से तो अच्छी कहानियां वसीदा दादी सुनाती हैं...हाँ यह तो बताओ कि तुम हो कौन ? आज पहले ही पहल दिखाई पड़ रहे हो यहाँ...'

'हां ! मैं शहर से आया हूं...' दीपक बोला।

'शहर से ?....कितना बड़ा है शहर ? इस गांव से बड़ा होगा ?'

'बहुत बड़ा, मगर तुम्हारे गाँव जैसा सुन्दर नहीं ....'

'किसके यहाँ ठहरे हो ?...'

'जमींदार के यहाँ...उनका बेटा मेरा दोस्त है ...'

'अच्छा ! कैलाश भैया के तुम दोस्त हो ? मैं तो जानती ही न थी'—बोली वह–'तो तुम यहीं गाँव में आकर क्यों नहीं रहते ? शहर में क्या रखा है ? यहाँ देखो, गन्ने हैं....आम हैं...अमरूद हैं—जितना चाहो खा सकते हो। शहर में तो इनके दाम देने पड़ते हैं न। तुम यहाँ रहने लगो तो मुझे रोज कहानी भी सुनाया करो....'

'मैं अभी दो हफ्ते तक यहाँ रहूँगा...' दीपक ने कहा—'तुम कल से यहीं आ जाया करना। मैं तुम्हें कहानी पढ़कर सुनाऊँगा....'

'खुदा कसम ! तुम बड़े अच्छे हो...हाँ, तुम्हारा नाम क्या है ?'

'दीपक...'

'दीपक-सीपक कैसा नाम है जी ? मेरा नाम देखो, कितना अच्छा है।'

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'पपिहरा !' उसने कहा।

'बड़ा अच्छा नाम है। तुम्हारी आवाज भी तो बड़ी मीठी है...'

'तुम्हें तैरना आता है ?'

'हाँ !....' दीपक ने कहा।

'आओ तैरें !' वह बोली।

'कोई देख लेगा तो क्या कहेगा ?'—

'कहेगा क्या ?'—पपिहरा बोली—'जानते हो, रसूल भैया गुण्डे हैं। पहाड़ जैसी देह है उनकी...सारा गाँव उनसे काँपता है। जमींदार उन्हें बहुत मानते हैं...किसी ने उँगली उठाई तो वे उसकी आँखें फोड़ देंगे...समझे कि नहीं....उठो ! आओ थोड़ी देर तक तैर लें....'

'दीपक !....ओ दीपक !' किसी ने अमराई से पुकारा।

दीपक उठता हुआ बोला—'कैलाश मुझे बुला रहा है....'

पपिहरा ने उसका हाथ पकड़ लिया, बोली—'तुम यहीं बैठो ! कैलाश भैया को आना होगा तो यहीं आ जायेंगे...'

'दीपक !....' फिर पुकारा कैलाश ने।

'मैं यहाँ हूँ भाई !' वहीं से दीपक ने चिल्लाकर कहा।

'यहाँ आओ—एक चीज दिखलाऊँ तुम्हें...'

'तुम्हीं यहाँ चले आओ—'

'तुम क्यों नहीं आते ? क्या किसी ने बाँध रखा है ?'

'हाँ....जल्दी आओ—मुझे छुड़ाओ...' बोला दीपक।

थोड़ी ही देर में एक समवयस्क युवक वहाँ आ पहुँचा। वही था कैलाश, दीपक का मित्र, जमींदार का पुत्र।

'इस शैतान से कब परिचय हुआ तुम्हारा ?...' कैलाश ने पपिहरा की ओर देखते हुए दीपक से पूछा।

'तुम्हारा गाँव ही ऐसा है भाई कि न जाने कितने शैतानों से परिचय होगा अभी...' हँसकर बोला दीपक।

पपिहरा ने बगीचे से तोड़े हुए आम अपनी ओढ़नी में बाँध रखे थे। कैलाश को देखकर उन्हें छिपाने का प्रयत्न करने लगी।

'वह क्या है रे...' कैलाश ने पूछा।

'मैंने तुम्हारे बगीचे से आम नहीं तोड़ा है कैलाश भैया !...यह तो इन्होंने तोड़कर दिया है...' पपिहरा बोली।

उसके भोलेपन पर दोनों मित्र हँस पड़े।

'इसका गाना सुना तुमने !' कैलाश ने दीपक से पूछा।

तो पपिहरा बोल उठी—'हाँ भैया ! नैना मतवाले वाला गाना इन्होंने सुना है....'

'चल हट !....' कैलाश बनावटी रोष से बोला—'बड़ी गाने वाली आई है....भोंपे की तरह तो आवाज है तेरी...'

'भला रहने दो जी....तुम्हारी ही आवाज बड़ी मीठी है...खुदा कसम जैसे फटा बाँस...'

'छोड़ दे दीपक को....उसे पकड़े क्यों है ?'

'ये चले जायेंगे तो कहानी कौन सुनायेगा ?....' बोली पपिहरा।

'छोड़ दे नहीं तो एकाध चपत दे दूँगा...' कैलाश बिगड़ा।

'चपत मारो अपने गाल पर कैलाश भैया ! लो मैं इन्हें छोड़ देती हूँ...' पपिहरा ने दीपक का हाथ छोड़ दिया।

'जा भाग यहाँ से....'

'दुतकारते क्यों हो जी मैं खुद ही चली जाऊँगी...'

'वह आम इधर देती जा...' कैलाश ने कहा।

'नहीं देती...' पपिहरा बोली—'इतने पेड़ हैं, चढ़कर तोड़ क्यों नहीं लेते ?'

पपिहरा चलने लगी। जाते-जाते दीपक से बोली—'देखो जी ! अगर कल तुम कहानी की किताब लेकर नहीं आये तो खुदा कसम इसी तालाब में कूदकर जान दे दूँगी अपनी....कहानियाँ मुझे बहुत अच्छी लगती हैं...' और पपिहरा चली गई।

दीपक पपिहरा की ओर एकटक देख रहा था। भोली पपिहरा चली जा रही थी, ओढ़नी में बँधे हुए आम की गठरी हाथ में पकड़े।

सामने से दो शराबी झूमते हुए चले आ रहे थे, एक ने कहा—'यार जुम्मन ! देख तो—वह चली आ रही है पपिहरा ! जवानी क्या है जैसे भरी बोतल !....एक प्याला पियो तो मजा आ जाय.... पीओगे जुम्मन !....'

'जाने दो यार ? फुलझड़ी को मत छेड़ो....कहीं रसूल से कह दिया इसने जाकर तो वह हाथी का बेठा अपना भेजा ही निकाल डालेगा....'

'उसकी ऐसी की तैसी !....मैं तो आज इससे जरूर बोलूंगा... हाय-हाय क्या बात है...क्या अदा है, क्या भोलापन है....कमरिया नागिन-सी बल खाय जुम्मन !...देखो तो....'

पपिहरा बगल से निकली तो उसने कलेजे पर हाथ रख लिया।

बोला—'अरे पपिहरा रानी ! जरा इधर भी देख लिया करो रुक कर, अब तो गुलाब की खुशबू बरदाश्त के बाहर होती जा रही है...'

पपिहरा रुककर बोली—'क्या है ?....'

'जरा नैनों से नैना मिलाये जाओ ..'

'लो !....' पपिहरा ने उसके पास आकर इतनी तीव्र दृष्टि से देखा उसकी ओर कि वह गिरते-गिरते बचा। डर से कई पग पीछे हट गया।

पपिहरा चली गई तो जुम्मन बोला—'क्या हुआ ! डर क्यों गये ?'

'अरे यार ! वह तो इस तरह लपकी आंखें निकालकर कि मुझे लगा कि मेरी नाक ही न काट खाय...जुम्मन मियां ! नाक रहे तो सभी कुछ है....है न ?'

'हां !...'

और दोनों झूमते हुए आगे बढ़ गये।

● ●

मैं उन व्यक्तियों में से हूं, जो अपने दिमाग का खून बहाकर पेट पालते हैं। लिखता हूं, खूब लिखता हूं। लिख-लिख कर दर्जनों पोथे रंग डाले हैं। वे पुस्तकें बाजार में असली घी की मिठाई की तरह बिक रही हैं और दुबले-पतले प्रकाशक हमारी लेखनी के बल पर इस समय इतने मोटे हो रहे हैं कि साल दो साल में उनके घर का दरवाजा उनके लिये अवश्य संकरा हो जायगा।

प्रकाशकों को अपना खून पिलाकर पाल रहा हूं मैं—जानता हूं कि ये नाग दूध पीकर अन्त में जहर ही उगलेंगे, फिर भी सोचता हूं शायद मेरा खून पीकर इनका विष कुछ मन्द पड़ जाय।

अकेला नहीं हूं मैं, देवी जी है और पांच बच्चे, रोते-बिलखते, चीं-चुपड़ करते। देवी जी बेचारी बच्चों की यह फौज संभालते-संभालते रात होने तक थककर एक दम चूर हो जाती हैं। बगल में

सोती हैं तो दो-चार मीठी बातें करके, मेरा जी बहला कर नींद से अपनी थकान मिटाने लगती हैं।

उस देवी के त्याग और तपस्या पर मुझे बड़ी दया लगती है। एक गरीब लेखक लाख चाहते हुए भी अपनी पत्नी को क्या सुख दे सकता है। सात जीवों का यह परिवार मेरी कलम और मस्तिष्क पर आश्रित है। एक कलम, एक दावात और एक दिमाग—उधर सात-सात खाने वाले, कहाँ से पेट भरें?

दो दिन से कुछ खाया नहीं है मैंने.... केवल पका हुआ पानी पीकर रह रहा हूँ—कई दिनों से ज्वर आ रहा था, सो उपवास का सहारा ले लिया है... दूसरे घर में दाने भी कम थे और जेब में पैसे की जगह शून्य था। आवश्यकता के समय न तो प्रकाशक ही कृपा करते हैं और न तो भगवान ही।

यही किताब लिख रहा हूँ आजकल। नाम है 'पपिहरा'–सोचता हूँ, परिश्रम करके इसे समाप्त कर लूँ तो सौ-पचास रुपये का प्रबन्ध हो ही जायगा। इससे अधिक क्या दे सकेंगे ये पाकेटमार खूनी प्रकाशक।

भूखा पेट और ज्वर से तप्त शरीर लेकर सबेरे चार बजे ही उठ गया हूँ। पुस्तक तो समाप्त करनी ही पड़ेगी—नहीं तो ये भूखे बच्चे, कृषकाय पत्नी! बड़ी आफत है।

अभी-अभी मुर्गा बोला है। प्रातः जागरण का मधुर सन्देश उसने सुना दिया है—अब कोई उठे या न उठे—मैं तो उठ ही गया हूँ और लिख भी रहा हूँ। मुनुआ भी जग रहा है और देवीजी भी। मुनुआ रो रहा है। ये बच्चे भी कितने शैतान हैं कि मुर्गा बोला नहीं और इनकी नींद गदहे की सींग हुई—दिन भर तो पें-पें करते ही रहते हैं, रात में भी दम नहीं लेने देते बेईमान!

देवी जी उसे चुप करा रही हैं मगर मानेगा नहीं वह।

प्रभा भी उठ गई और आलोक-त्रिलोक भी उठ बैठे—जैसे एक सियार का हुँवाना सुनकर सभी सियारों को हुँवास लग गई हो।

देवी जी ने सर घुमाकर मुझे लिखते देख लिया है। वे जानती हैं

कि इन बालकों का इस तरह से हुँवाना मुझे जरा भी पसन्द नहीं, अतः उन्हें चुप कराने में उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मुनुआ को छाती से लगाकर उसे दूध पिलाने लगी हैं। मगर मैं जानता हूं कि सूखी ठठरी पर लटकी हुई उन दो छातियों का सारा दूध अभाव की आग ने सोख लिया है। अब वहां क्या है ? केवल चाम और मांस का लोथड़ा और उसके पीछे धड़कता हुआ मां का एक सुकुमार दिल।

परन्तु चाम चूसने से कहीं बालकों को सन्तोष होता है ? तभी तो मुनुआ और जोरों से रोने लगा है। कान के परदे फटे जा रहे हैं, तबीयत में वैराग्य भरता जा रहा है। जी चाहता है कि सबको छोड़कर चल दूं कहीं।

मगर ये मासूम बच्चे !

यह कराह भरी नारी !

मेरे चले जाने पर इनका कौन सहारा रह जायगा ? इनके लिए तो मैं ही भगवान हूं। इन्हें खाना दूं तो ये खायें, इन्हें कपड़ा दूं तो ये पहने—इन्हें मारूं तो ये रोयें—कितने निरीह हैं बेचारे !

मैं पशु बनकर ऐसा क्यों सोचने लगता हूं ? यदि छोड़ दूंगा तो मौत भी नहीं पूछेगी इन्हें, फिर अत्याचारी नरपशुओं से भरे समाज की तो बात ही अलग।

उजाला हो गया है। मुहल्ले वाले राम-राम जपते उठ बैठे हैं। मैंने भी कलम रोक दी है। लालटेन बुझाकर अंगड़ाई ले, थकान मिटाने लगा हूं।

देवी जी को बगल में खड़ी देखकर मैं उनकी ओर आकर्षित होता हूं...वे मेरा मस्तक सहलाने लगती हैं।

कहती हैं—'बड़ा तेज बुखार है, कब से लिख रहे हो ?'

'यही थोड़ी देर से—'

'कुछ अपने शरीर का भी ख्याल रखा करो...'

'शरीर का तो ख्याल करता हूं परन्तु यह पेट अपने वश का नहीं....'

'कल से ही बच्चे कुछ खाये नहीं हैं...'

सुनकर मुझे कितनी ग्लानि, कितना दुःख होता है—कह नहीं सकता। इन बच्चों को खाना ही था तो मुझ जैसे दरिद्र के घर जन्म क्यों लिया?

'न हो तो हरिप्रसाद से कुछ रुपये माँग लो...' वे कहती हैं—'इनकार नहीं करेंगे वे...'

'यह भीख माँगने की कला मुझे नहीं मालूम...रूखे स्वर में कहता हूं मैं—'अभी तक मुझमें जीवन शेष है। भीख माँगकर उसका ह्रास न करूंगा...तुम सबको भूख से मरते-तड़पते देख सकता हूं, अभी मेरा कलेजा इतना मजबूत है...मगर दूसरों से भीख माँगने के लिए मेरे हाथ नहीं उठेंगे....'

मुझमें आत्म-सम्मान की मात्रा बहुत है और यह मेरे लिये मौत है। देवीजी चुप रह जाती हैं। मुनुआ फिर रोने लगता है.... वे व्यस्त भाव से उस ओर चली गयी हैं।

मैं उस नारी की सहनशीलता एवं धैर्य पर आश्चर्यचकित हूं। समुद्र जैसे उसके हृदय में अशान्ति के लिए कोई स्थान नहीं। धीर-गम्भीर है उसका हृदय। कितनी महानता है।

फिर कलम उठा ली है मैंने और पूरी रफ्तार से लिखने लगा हूं।

● ●

नदी की लहरों की तरह बलखाती, पानी की तरह छलकती-इठलाती, फूलों की तरह हंसती-मुसकाती, हाथ में गुलेल और कन्धे पर आम की झोली रखे पहुँच गई पपिहरा अपने घर।

कच्चा घर, खपरैल की छाजन, लिपा-पुता साफ-सुथरा दूर से झलक रहा था। छोटा-सा दरवाजा बाहर से बन्द था। सांकल खोलकर पपिहरा अन्दर आई और छोटे से खटोले पर आम की गठरी

पटक दी उसने। हाथ की गुलेल खूँटी पर रख दिया फिर खटोले पर जा बैठी वह। बड़बड़ाने लगी अपने आप—'अभी तक नहीं आये रसूल भैया। पीकर पड़े होंगे कहीं धूल में....बीस दफा कह दिया—भैया हो, यह लुच्चई छोड़ो, यह बोतल का खून पी-पीकर क्या करोगे, मगर कौन सुनता है मेरी...एक दिन खाना न पकाऊँ तो भूखों मर जायं... कहती हूँ कि शादी कर लो....घर में बीवी लाओ और उस पर हुकुम चलाओ....मैं कोई जनम भर की बाँदी थोड़े ही हूँ—सुनकर ही-ही हँस देते हैं बस !....आने दो तो मैं भी देखूँगी आज...'

'बन्नो ! हरे बन्नो !....' बगल के घर के किसी जनानी-बूढ़ी आवाज ने पुकारा !

'लो, वहीदा दादी भी चीखने लगीं। खुदा कसम इन्हें भी मेरे बगैर चैन नहीं पड़ता'—फिर जोर से बोली—'आई दादी ?'

उठी वह, बाहर आकर बगल के कमरे में घुस गई ! जमीन पर टाठ का टुकड़ा बिछाये एक बुढ़िया बैठी हुई थी, जमाने की सफेदी बालों में लगाये।

'क्या है दादी ?....' पपिहरा भी बगल में जा बैठी।

'कब आई रे बन्नो।' बुढ़िया बोली।

'अभी चली आ रही हूँ दादी ! तुम्हारा बुखार कैसा है—'

'चल हट ! तेरे सात पुरखों को बुखार हो मुँहजली कहीं की...'

बुढ़िया बुखार के नाम से चिढ़ती थी।

पपिहरा ने उसे चिढ़ाने के लिये ही बुखार का नाम लिया था।

'अच्छा बिगड़ो मत दादी ! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ'—बोली पपिहरा—'देखो दादी ! तुम्हारे हाथ काँप रहे हैं, जैसे... जैसे बुखार...'

'चुप रह हरामी ! अबकी बार बुखार का नाम लिया तो तेरे दाँत तोड़ दूँगी....' बुढ़िया पुनः बिगड़ी।

'जरा अपने दाँत तो देखो दादी ! एकदम पो...पो...पोपला

मुँह हो चला तुम्हारा, इस भरी जवानी में ही....' हँसती हुई पपिहरा बोली।

'पोपला मुँह है तो क्या ? ला पत्थर के चने—देख तोड़ती हूँ-चबाती हूँ कि नहीं....' बुढ़िया ने कहा—'शैतान मुझे जवान कहती है। देख बन्नो ! यह बोली-बट्टा मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं भी कभी तेरी तरह जवान थी तो पैर अल्लाह के फजल से जमीन पर नहीं पड़ते थे...'

'तब कहाँ पड़ते थे दादी।'

'लोगों के सीने पर...'

'फिर ?'

'फिर लोग कलेजा पकड़कर कराह उठते थे, घायलों की तरह तड़पते थे दिन-रात मेरे लिए...और मैं थी कि बुलबुल की तरह कि किसी का पकड़ना मुश्किल...'

'ऐसी थी तुम दादी ?' पपिहरा आश्चर्य में भरकर बोली।

'हाँ रे हाँ...आँखें कपार पर क्यों चढ़ाती जा रही है, यकीन नहीं आता क्या तुझे....' बुढ़िया ने हाथ की उँगलियों को इस तरह नचाया कि उनसे बीती जवानी की अदा छलक-छलक कर रह गई।

'मुझे यकीन है दादी ! तुम भी अपने जमाने की एक ही थी...' पपिहरा ने कहा।

बुढ़िया पड़ोस के नाते पपिहरा की दादी लगती थी, यों कोई नजदीकी रिश्ता नहीं था। पपिहरा के लिए केवल एक ही व्यक्ति अपना था, उसका भाई रसूल ! गांव भर में अपनी गुण्डई और हेकड़ी के लिए प्रसिद्ध था वह। सभी उससे डरते थे। दूर-दूर तक उसका नाम जलती आग की तरह फैला हुआ था।

'क्या वक्त होगा बन्नो ?' पूछा बुढ़िया ने।

'अब तो साँझ हो चली है दादी !' बोली पपिहरा—'दीवट जला दूँ क्या ?'

'हाँ बेटी !....'

पपिहरा ने कडू तेल का दीवट जलाया फिर आकर बुढ़िया के पास बैठ गई।

'रसूल अभी तक नहीं आया क्या ?'

'नहीं दादी !' पपिहरा ने कहा—'मैं तो आजिज आ गई हूँ रसूल भैया से।'

'अरी छोकरी ! तू उस बेईमान के लिए क्यों परेशान होती है...चल खा-पीकर आराम से सो रह ?'

'भैया को तकलीफ होगी दादी।'

'कहाँ का भैया रे लड़की ?'—बुढ़िया पोपले मुँह से हो-हो कर हँसी—'वह तेरा है कौन, जो उसके लिए परेशान होती है तू ?'

'क्या कह रही हो दादी तुम ?'

'हाँ रे हाँ ! वह तेरा भाई थोड़े ही है...' बुढ़िया ने कहा।

'तो ?'

'तू तो रसूल को कहीं मिल गई थी....जब वह तुझे लाया था तो चार महीने की थी...अब जवान हो गई है तो क्या जानेगी यह सब ?'

बुढ़िया की बात सुनकर पपिहरा का हृदय धड़कने लगा। यह भेद की बात वह अब तक जानती न थी। वह तो रसूल को अपना सगा भाई ही समझती थी।

'क्या तुम सच कहती हो दादी ! खुदा कसम बिलकुल सच कहना....'

'सच है बन्नो सच है यह ! तेरा वह कोई नहीं, मगर लड़कपन से ही दुलार-प्यार करके पाला है उसने...कभी तुझे तकलीफ नहीं होने दी...तेरे ही लिए अब तक शादी भी की नहीं उसने....'

'क्यों ? क्या मैं मना करती हूँ उन्हें ? मैं तो रोज ही शादी करने को कहती हूँ—' पपिहरा ने कहा।

'अरी लौंड़ी ! जब उसकी जोरू आ जायेगी तो तेरे कान ऐंठेगी न ऽ तब छठी का दूध याद आ जायेगा तुझे...! हाँ नहीं तो....'

'अरी दादी ! कान एँठेगी तो मैं उसकी नाक टेढ़ी कर दूँगी.... मेरे घूँसे को भी कम समझना तुम !...'

'हाँ भाई ! नई-नई जवानी है न, तेरा घूँसा भी जवानी के आलम से सराबोर होगा....अपने को इस नाक-कान के झमेले से क्या करना है....तू जाने तेरा काम....'

'तो मैं चलूँ दादी ! मुझे बुखार चढ़ा आ रहा है...'

सुनकर बिगड़ उठी बुढ़िया, बोली—'हरामी की पिल्ली ! तेरे बाप को भी कभी बुखार चढ़ा था कि तुझे ही चढ़ेगा....दिन पर दिन पके फोड़े की तरह तो निखरी आ रही है—और चाहिए ही क्या ?...चल हट यहाँ से...'

'आज कोई कहानी नहीं सुनाओगी दादी ?....'

'नहीं ! जा सो रह ! बुखार आ गया है न तुझे ?'

'रखे रहो तुम अपनी कहानी अपने ही पास....' बोली पपिहरा—'तुमसे अच्छी कहानियाँ तो दीपक बाबू जानते हैं ...'

'भला रे भला ?'—बुढ़िया मधुर झिड़की देकर बोली—'यह दीपक-दीया तुझे कहाँ से मिल गया ? जल न तू भी अब दीये की तरह उसके साथ...'

'अब मैं चली दादी !...आदाब !...' झुककर आदाब बजाने लगी पपिहरा।

तो बुढ़िया बोली—'जरा धीरे से बन्नो ! इतना मत झुक !... तेरी कमर ने जवानी के सिर्फ चौदह ही बल खाये हैं चौदह साल में। नाजुक है न, कहीं बाँस की तरह लचक न जाय...'

'चलो हटो दादी, तुम बड़ी 'व' हो...' होठों पर मदिरा भरी मुस्कराहट छलकाकर बोली पपिहरा और बाहर निकल आई।

अपने घर में आकर दीपक जला, खटोले पर जा बैठी। धीरे से कुर्ता उतार कर उसने सिरहाने रख लिया।

पपिहरा लेट गई खटोले पर। कमर पर अस्त-व्यस्त लहँगा पड़ा

था। नीचे की गोरी-गोरी टाँगें और ऊपर की जवानी भरी देह, बिना किसी आवरण के, दीवट के मद्धिम प्रकाश में झिलमिला रही थी।

सोच रही थी पपिहरा रसूल के विषय में।

तो यह रसूल उसका कोई नहीं है। जिसे वह आज तक अपना सगा भाई समझती आ रही थी, जिसके सुख-दुःख के लिए हमेशा परेशान रहा करती थी, वह उसका कोई नहीं है—कोई नहीं।

और वह भयभीत-सी क्यों हो गई है एकाएक? वह अभी कल ही जवान हुई है और सुन रही है कि रसूल उसका कोई नहीं है। वह गुण्डा है, शराबी है, बदमाश है....कहीं वह उसे....

लेटे-लेटे और चिन्तन करते-करते पपिहरा की आँखें बन्द हो गयीं। अलसाई हुई देह नीद-क्रीड़ा करने लगी। साँस आकाश के गम्भीर बादलों की तरह मन्थर गति से चलने लगी।

घण्टों बीत चले। सोई रही पपिहरा बेखबर।

एकाएक किवाड़ पूरे खुल गये। एक भयानक आकृति ने अन्दर झाँककर देखा।

काला शरीर, इतना काला कि दीवट के धुंधले प्रकाश में शरीर का रंग नई पालिश की तरह चमक उठा। कमर में छींटदार मैली लुङ्गी, बदन में पूरी बांह का कसा हुआ कुर्त्ता, सर खुला, हाथ में बरछा लगा हुआ लम्बा लट्ठ और बदन की एक-एक शिकन कसरत से गठी, उभरी हुई।

वह अन्दर आ रहा और भीतर से किवाड़ में साँकल लगा दी उसने। कोने में बरछा रखने के बाद झुककर खटोले पर लेटी हुई पपिहरा को देखा। पपिहरा न जाने किस दुनिया में थी। कमर का लहँगा और भी अस्त-व्यस्त हो चला था। साँस की एक-एक गति पर छातियाँ उठती-बैठती थिरक रही थीं। अलकों की एक-एक लट गालों पर इस तरह लोट रही थी जैसे काली नागिन गोरे चांद को

हँसकर श्रम से सो गई हो। होंठ कुछ कुछ मुस्कराते-से थे। जैसे किसी का आह्वान कर रहे हों।

वह देख रहा था एकटक। पैर शराब के नशे से बेकाबू होकर लड़खड़ा रहे थे। वह आगे बढ़ा, खटोले के पास आकर खड़ा हो गया। एक बार पुनः देखा—दिमाग की रगें झनझना उठीं।

धीरे से बैठ गया वह खटोले पर।

जगी नहीं पपिहरा। वह एक मादक स्वप्न देख रही थी। वह देख रही थी कि दीपक की गोद में सर रखकर लेटी हुई है और उसके कानों के पास अपने होंठ लगाकर दीपक एक मधुर प्रेम कहानी कह रहा है। विभोर है पपिहरा, सुध-बुध भूल बैठी है। दीपक की साँसें उसके गालों पर लोट रही हैं। कितनी अच्छी कहानी है यह ?

तभी, जैसे किसी ने एक जलता अंगारा रख दिया उसके होठों पर। चुम्बन की यह अनुभूति उसके लिए एकदम नई है। वह पागल हो उठी है। मादकता सहनशीलता की सीमा पार कर गई है। वह चिल्ला उठती है—'नहीं! अभी नहीं!...यह सब अभी नहीं.... नहीं....'

और तब उसकी आंखें झटके के साथ खुल गयीं। छातियां अब तक तेजी से उठ-बैठ रही थीं। उसने देखा कि वह उस दीर्घाकार काले दैत्य की गोद में पड़ी है।

जैसे सांप ने काट लिया उसे, जैसे बिजली का सोटा उसके नंगे सीने पर सटाक से आ पड़ा हो....वह चीखी और छटककर दूर जा पड़ी उसकी गोद से! बोली—'रसूल भैया तुम ?...'

रसूल उठकर एक भयानक हँसी हँस पड़ा और लोलुप-दृष्टि से पपिहरा की ओर देखने लगा। उसकी आँखों में शराब की आग जल रही थी।

अब पपिहरा का ध्यान अपने नंगे बदन की ओर गया। उसने लपक कर अपनी ओढ़नी उठा ली और ज्यों-त्यों करके शरीर पर लपेट लिया। हँसता चाँद बदली की ओट में छिप गया।

परन्तु रसूल की आँखें उसे इस तरह घूर रही थीं जैसे ओढ़नी को भेदकर अन्दर कलेजे तक पैठी जा रही हों।

यद्यपि रसूल ने उसे आज तक कभी बहन कहके नहीं पुकारा था, परन्तु इससे क्या, वह तो रसूल को 'भैया' कहती है। क्या हो गया है उसके भैया को ?

'पपिहरा !...' पुकारा रसूल ने।

तो चौंक पड़ी पपिहरा, रसूल की आवाज में वासना की बदबू पाकर।

'इधर आ पपिहरा ?....' रसुल ने पुनः कहा।

'मैं नहीं आती रसूल भैया ?....' डरी आवाज में बोली पपिहरा।

'क्यों ?...'

'खुदा कसम ! मुझे डर लग रहा है ..तुम बाहर जाकर सो रहो भैया। मुझे दिक न करो...मैं वसीदा दादी को पुकारती हूँ ...'

'अगर जरा भी जबान खोली तो तेरा गला टीप दूँगा...' क्रोध भरे स्वर में कहा रसूल ने और आगे बढ़ पपिहरा का हाथ पकड़कर अपने खटोले पर खींच लिया।

शराब की बदबू से पपिहरा की नाक बिंध गई। वह रोती हुई बोली—'खुदा कसम ! मैं मर जाऊँगी रसूल भैया ! मुझे छोड़ दो, तुम अपनी शादी कर लो...'

'शादी तो की है...'

'किससे ?'

'तुझसे और किससे ?...'

'चुप रहो भैया तुम !....'

'मुझे भैया मत कह...' बोला रसूल—'समझी....मैं तेरा भाई नहीं हूँ।'

'या खुदा ! फिर कौन हो तुम ?....'

'मैं तेरे बाप का दुश्मन हूँ...'

'और मैं ?'

'तू मेरे दुश्मन की बेटी है...' कहा रसूल ने—'तेरे बाप ने मुझे तबाह किया था और मैं तुझे चुराकर यहां उठा लाया। सोचा था, जब तू जवान होगी तो तुझे अपने पैर की जूती बनाकर तेरे बाप को दिखाऊंगा...'

'यह सब कहानी है रसूल भैया! मैं तुम्हारी कहानी नहीं सुनना चाहती। मैं वसोदा दादी की कहानी सुनूंगी। तुम्हारी कहानी बड़ी डरावनी है। चुप रहो तुम!...'

'तू इतनी जल्दी जवान हो गई, वह मुझे मालूम ही न था...' बोला रसूल—'आज तुझे इस हालत में न देखता तो जानता भी नहीं कि जब मेरे इन्तकाम का वक्त आ गया....'

कहकर रसूल ने पपिहरा को जबरदस्ती गोद में उठा लिया। पपिहरा का नाजुक बदन जैसे चक्की में पिसकर रह गया।

'मुझे छोड़ दो रसूल भैया।' चीखकर बोली वह—'खुदा जानता है, मैं तुम्हारी बहन हूं।'

'बहनें मुझे बहुत-सी हैं...आज या तो अपना इन्तकाम ही लूंगा या तो खून करूंगा...' दांत पीसकर बोला रसूल।

उसका दैत्याकार शरीर पपिहरा को जकड़े हुए था। वह पूरा मदहोश बन चुका था।

उसने चीखती हुई पपिहरा को उठाकर खटोले पर पटक दिया।

'रसूल भैया!' चिल्ला उठी पपिहरा—'उफ्! या खुदा! छोड़ो....छोड़ो!....कमीने कुत्ते!...जलील....शैतान....'

पपिहरा ने अपने दांत रसूल की बांह में गड़ा दिये। खून बह चला। रसूल का बन्धन कुछ ढीला हुआ। उसी समय पपिहरा ने अपना हाथ छुड़ाकर रसूल के मुख पर मारना शुरू कर दिया। घूंसे खाकर रसूल की नाक खून उगलने लगी।

वह पैशाचिक अट्टहास कर उठा—'बेईमान की बच्ची! मैं तेरा खून करूंगा....'

लपक कर उठा वह और कोने में खड़े बरछे की ओर बढ़ा। लम्बा बरछा उसने मजबूत हाथों में पकड़ लिया। बरछा हाथ में लेते ही उसके दिमाग का एक-एक सिरा झन्ना उठा।

जिसे उसने इतने दिनों तक पाला-पोसा, जिलाया, उसका खून करेगा वह ?

उफ् ! हाथ में बरछा लिए वह निश्चल खड़ा रहा। मस्तक में आंधियाँ चलने लगीं। बरछा कोने में फेंककर उसने अपना मस्तक पकड़ लिया और दौड़कर बाहर पत्थर के चबूतरे पर जा बैठा।

वह आज क्या करने जा रहा था ? इतना बेताब तो वह कभी नहीं हुआ था ? यह हैवानियत उसके दिल में कैसे घर कर गई ?

शराब का नशा उतर चुका था। दिमाग चिन्ता में चक्कर खा रहा था। ज्यों-ज्यों वह सोचता गया, त्यों-त्यों उसका हृदय ग्लानि से भरता गया।

उसने अपना मस्तक धीरे से ठोंका, चोट खाकर मस्तिष्क और झन्ना उठा।

उसने इधर-उधर देखा। पत्थर का एक बड़ा-सा टुकड़ा पड़ा था नीचे, झुककर उसे उठा लिया।

हाथों में हरकत हुई और....खट्ट...खट्ट...!

चोट लगी, सर और पत्थर बज उठे आपस में और खून की एक गाढ़ी रेखा रसूल की गंजी पर रेंगने लगी।

उसका दिमाग कुछ ठिकाने आया। वह चबूतरे पर लेट गया।

किवाड़ की आड़ में खड़ी हुई पपिहरा यह सब देख रही थी। घृणा भाग चुकी थी। वह समझ गई थी कि रसूल आज ज्यादा पीकर आया था।

वह धीरे से आगे बढ़ी और रसूल के सिरहाने आकर चबूतरे पर बैठ गई। रसूल के मस्तक से खून बह रहा था। वह अपनी ओढ़नी से खून पोंछने लगी।

स्नेह का स्पर्श पाकर रसूल की चेतना सजग हुई। धीरे से

बोला वह—'पपिहरा...'

'रसूल भैया !....'

'तू सोई नहीं अभी तक ?'

'नहीं भैया !....' पपिहरा ने कहा—'तुम्हारी तबीयत कैसी है अब ?'

'वह पत्थर उठाकर दो-चार दफा मेरे सर पर और ठोंक दे तो तबीयत एकदम ठीक हो जायगी—'

'तुम इतना पी क्यों लेते हो रसूल भैया ! कह दिया कि यह आदत बुरी है, मगर तुम तो जैसे कुछ सुनते ही नहीं...'

'क्या करूँ ? हौली से पूरा पीकर निकला था कि वह शैतान का बेटा जुम्मन मिल गया और मुझे फिर हौली घसीट कर ले गया। काफी पिला दिया उसने।'

'खाना खाओगे भैया !....'

'तू खा चुकी या नहीं....'

'हाँ...' झूठ बोल गई पपिहरा। खाना तो उसने बनाया ही नहीं था। दोपहर की तीन रोटियाँ और थोड़ी सी चटनी बची हुई थी।

'ला मैं खालूँ थोड़ा-सा....' बोला रसूल।

पपिहरा उठी। पहले पानी लाकर उसने रसूल का मस्तक धोया फिर अपनी ओढ़नी फाड़कर घाव पर 'पनकपड़ा' बाँधा। इसके बाद दोपहर की रोटियाँ लाकर उसने रख दी रसूल के आगे।

'तू भी खाले पपिहरा....'

'खुदा कसम रसूल भैया ! मेरा पेट बिलकुल भरा है...'

'झूठ बोलती है बेईमान ! पेट तो तेरा खण्डहर हो रहा है, क्या मैंने देखा नहीं था ? ले, थोड़ा ले...खा ले....'

दोनों ने साथ-साथ खाया ! पपिहरा अन्दर सोने चली गई और रसूल बाहर चबूतरे पर लेट रहा।

उसने जेब से एक छोटी-सी शराब की बोतल निकाली और

गट्-गट् करके पूरा पी गया। सोचा, नशा आने से दर्द भी कम हो जायगा और नींद भी आ जायगी।

परन्तु शराब पीने से मस्तक फिर उड़ चला....इधर-उधर की बातें उसके दिमाग में आकर गरजने लगीं।

यह पपिहरा उसके दुश्मन की बेटी है। सेठ रतनलाल ने उसे तबाह किया था...तबाह किया था।

रसूल को लगा, जैसे चारों ओर के पेड़-पत्ते चिल्लाकर उससे कर रहे हों—'सेठ रतनलाल ने तुझे तबाह किया था....'

चौदह साल पहले की बातें सोचने लगा वह।

शहर में वह नौकरी करता था। एक सलोनी-सी बीवी थी, चाँद जैसी गोरी और फूलों जैसी खुशनुमा। मगर उसकी बदसूरती पर बीवी उसे प्यार नहीं कर सकी और सेठ रतनलाल से आँखें लड़ा बैठी। एक दिन रसूल ने धड़कते हुए कलेजे और जलती हुई आँखों से वह दृश्य देखा। उसकी बीवी एकदम नग्न और सेठ रतनलाल शराब में चूर एक ही सोफे पर, गले में बाँहें डाले होठों से होंठ सटाये... देखता रहा रसूल! उस वक्त बोला नहीं कुछ। जब बीवी घर आई तो उसने उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया, छूरे से उसके स्तन काट लिए, तड़पा-तड़पा कर मारा उसने अपनी बीवी को और लाश ले जाकर एक कुएँ में डाल दी। तभी से रसूल का दिमाग बिगड़ा....वह शराब पीने लगा। गुण्डई पर उतर आया। इसके पहले वह पानी-सा स्वच्छ था....और एक दिन इन्तकाम की आग में जलता हुआ रसूल, चुपके से सेठ रतनलाल की बेटी को चुरा लाया और रातों-रात गाँव में आ बसा, जो उस शहर से बहुत दूर था....'

शराब का नशा चढ़ा आ रहा था। पहले की घटनायें सोचते-सोचते उसका दिमाग फिर खराब हुआ जा रहा था। पशुत्व जाग उठा था, दाँत पीसने लगा था वह। बदला लेने की आग धू-धू कर जलने लगी थी।

एकाएक वह उठा तेजी से। दौड़ा दरवाजे की ओर, भड़ाक्

से किवाड़ खोलकर बेखबर सोती हुई पपिहरा पर झपट पड़ा ?

चिल्लाया—'बदला लूंगा मैं...मैं तुझे बरबाद करूंगा....तुझे मिटा दूँगा....तुझे कुतिया बनाकर छोड़ूंगा...'

पपिहरा जागी, चीखी....चिल्लाई और....

• •

और कलम मेरे हाथ से छूटकर गिर पड़ी है। पचास पृष्ठों के उस बण्डल को हाथ में पकड़े हसरत भरी निगाहों से देख रहा हूं। कुछ ही दिनों में मेरी यह निधि किसी लोभी प्रकाशक के लिए वरदान प्रमाणित होगी। परन्तु सौ-पचास रुपयों से अधिक का इसका मूल्य नहीं। आज की दुनिया किसी के खून के कीमत क्या समझे...'

मैं हस्तलिपि को उठाकर कलेजे से दबा लेता हूं! सच कहता हूं, इतनी गर्मी प्रेयसी के सुपुष्ट वक्षस्थलों में भी नहीं होगी। मुझे बड़ी राहत मिल रही है। लगता है जवानी की सोलह साल की मादकता लिए कोई युवती लिपट गई हो मेरे धड़कते सीने से आकर।

उसे सीने से लगाये मैं कहता हूं—'मेरी रानी! तुम्हारी पूर्णता ही तुम्हारा यौवन है, जिसका मैं पुजारी हूं...प्रेयसी की यह पूर्णता ही तो पुरुष के लिए पूजनीय है...'

तभी आ पहुँचती हैं देवीजी! शायद 'रानी-रानी' की पुकार सुनकर उन्हें कुछ शंका हुई है, तभी तो वे लपकी हुई आ गई हैं।

मुझे कागज को कलेजे से लगाये देखकर हँस पड़ती हैं वे, वैसी हँसी शायद आज पहली बार देख रहा हूं उनके मुख पर। मेरा पागलपन देखकर ही उन्हें ऐसी हँसी आई है।

'किस रानी को पुकार रहे हो ?' पूछती हैं वे।

मैं—'तुम्हें ही तो—कहाँ थी ?'

वे—'क्यों झूठ बोलते हो—अब तो कलम-दावात कागज से प्यार हो गया है तुम्हारा, फिर स्त्री-बच्चे की सुध कहां आये ? सबेरे

से लिखने बैठे हो, तब से एक बार भी सर उठाकर सामने नहीं देखा....'

मैं—'कोई दिखाई ही नहीं पड़ा तो देखता किसे ?'

वे—'जो आँखें बन्द कर ले—उसे कोई दिखाई ही क्यों पड़ेगा ?....तुम तो लिखते-लिखते जाने कहाँ जा पहुँचते हो ?'

सर उठाकर देखता हूँ तो देवीजी चली गई हैं।

धीरे से वह हस्तलिपि नीचे रख दी है मैंने।

चारपाई पर बैठता हूँ तो वह हिल उठती है, जैसे भूडोल आ गया हो ... चक्कर आ जाता है। मैं धीरे से लेट जाता हूँ....आँखें खुली हैं—देख रहा हूँ कि देवीजी हाथ में कुछ लेकर चारपाई के पास खड़ी हैं और वेदना भरी आँखों से मुझे देख रही हैं।

'थोड़ा-सा खा लो....' वे कहती हैं।

भूखा तो हूँ परन्तु पेट में क्षुधा की आग प्रतीत नहीं होती। अभी दस-पाँच दिन तक और भी बिना खाये रह सकता हूँ !

कहता हूँ—'भूख नहीं है....'

'तुम्हें खाना पड़ेगा आज....' वे हठ करती हैं।

अब उन्हें कोई कैसे बताये कि बिना भूख के खाना हानिकारक होता है। मगर....यह खाना आया कहाँ से ? पैसा तो था नहीं...! तो अब गल्ला मुफ्त बंटने लगा ? सभी प्रश्न उठ रहे हैं मन में। यह खाना कहाँ से आया ? समझ में नहीं आता।

कुछ जाड़ा-सा लगने लगता है।

कहता हूँ—'ऊपर रजाई डाल दो...'

वे—'पहले खा लो....'

मैं—'यह गल्ला कहाँ से आया ?'

वे—'हरि प्रसाद से माँग लाई ..सोचा, तुम मुँह खोलकर किसी से कहोगे नहीं और बच्चे भूखों मर जायेंगे...'

मैं सन्न रह गया हूँ। यह अन्न ! भीख माँगकर लाया हुआ यह अन्न ! देनेवाली नारी को आज दूसरों से भीख माँगनी पड़ी। उफ् !

लज्जा, प्रतिष्ठा एवं मानापमान सब कुछ भूल गई आज की नारी।

चिल्ला पड़ता हूं मैं—'ले जाओ....ले जाओ... इस विष की थाल को...तुम मृत्यु लेकर मेरे पास आई हो....जाओ....'

झन्नाटे की आवाज होती है। शायद देवीजी के हाथों से थाली जमीन पर छूट गिरी है...बोला भी तो था मैं इतनी जोर से, जैसे बादल गरजा हो, तभी तो बेहोश हुआ जा रहा हूं मैं।

मैं एक सपने के बीच से गुजरने लगा हूं...होश में हूं और बेहोश भी और इसके बाद पता नहीं कब तक बेहोश रहा हूं।

लगता है कि आधी रात होने को आई। बाहर कुत्ते भी तो भौंक रहे हैं। स्वामिभक्ति की चेतना में सदैव लीन रहने वाले ये पशु, आज के इन्सान से हजार गुने अच्छे हैं! आज का मानव तो इन्सान के आगे हाथ जोड़ता है और पीठ पीछे छुरा भोंकने में नहीं हिचकता।

'कितनी रात गई है!' मैं पूछ बैठा हूं।

'आधी से ज्यादा!....' वे उत्तर देती हैं।

इस समय ज्वर भी कुछ कम है और मस्तिष्क भी कुछ सीधा हो चला है—तभी विचारधारायें बहने लगी हैं।

जागते रहियो!....

बाहर से चौकीदार की आवाज आती है।

इस चौकीदार की आवाज आज पूरे दस दिन के बाद सुन रहा हूं रात के समय। और दिनों शायद जवान चौकीदारिन को लेकर कथरी ओढ़े, जाड़े की रात काटता रहता था...नाम है इसका रामटहल। बूढ़ा है मगर इसकी स्त्री अभी 'छलकता जाम' है। तीसरी शादी की है इसने, जाति का पासी है।

मुहल्ले भर में जवान चौकीदारिन के विषय में काफी चर्चा है। कहते हैं कि बूढ़े से उसकी हविस मिटती नहीं—सो जब वह गलियों में 'जागते रहियो' चिल्लाता हुआ घूमता रहता है तो उसकी घर-वाली अपनी कोठरी में जाने कितने जवानों को शरण देती है।

देवीजी अब तक बैठी हैं। बेचारी के दिल में मेरी अस्वस्थता घर

कर गई है। धीरे से मैं उनका हाथ पकड़ लेता हूँ तो वे चौंक पड़ती हैं।

कहती हैं—'तुम्हारा बदन अब तक आग हो रहा है...'

मैं हँस पड़ता हूँ, एक फीकी हँसी—'क्या जल गई तुम ?....'

वे—'नहीं तो ?....'

मैं—'आओ....'

वे—'कहाँ ?'

'मेरे पास आकर सो रहो...'

और मैं उन्हें धीरे से अपनी रजाई में खींच लेता हूँ...जलते बदन से लिपट कर उन्हें भी संतोष होता है और मुझे भी।

'तुम इतना लिखा मत करो...' प्यार भरे स्वर में कहती हैं वे।

'रानी, तुम शिक्षित हो—पढ़ने-लिखने की महत्ता मेरे ही समान समझ सकती हो—यही तो व्यसन है—इससे छूटकर शायद जिन्दा न रह सकूं मैं...'

वे—'और इससे लिपटकर तो तुम अपने को और बरबाद कर लोगे....'

लीजिए, सबेरा होने को आया। अभी-अभी ही मुर्गे ने बांग दे डाली है। रात भर तक हमारी ही तरह ये भी नहीं सोते क्या कमबख्त! देवीजी उठकर अपने कमरे में चली गई है, क्योंकि मुनुआ गला फाड़-फाड़ कर रोने लगा है। मैं चारपाई पर बैठ जाता हूँ।

मेरे घर से कुछ ही दूर पर एक मन्दिर है। पुजारी अत्यन्त वृद्ध हो चले हैं। उनका वह जर्जर बुढ़ापा उन्हें रात भर खों-खों कराता रहता है। सबेरा होते ही वे 'हरे राम हरे राम' जपने लगते हैं—मुग्ध होकर कीर्तन करते हैं, करताल बजाते हैं और लोग कहते हैं कि वे सब कुछ भूलकर आत्मविस्मृत हो नाचने भी लगते हैं।

इन पत्थर के देवी-देवताओं का महत्त्व मेरी दृष्टि में पहले बहुत अधिक था। घण्टे दो घण्टे तो जरूर इनकी पूजा करता था—प्रतिदिन। एक दिन मैंने एक बदमाश कुत्ते को अपने देवता पर मूत्र-त्याग करते हुए देख लिया—यह भी देखा कि मूत्रपान करके

देवता चुपचाप बैठे रहे - जरा भी हिले-डुले नहीं—थोड़ा-सा श्राप भी नहीं दिया उस हरामी जानवर को।

मैं देखता रहा....अपने देवता के इस आलस्य एवं असमर्थता पर मुझे बड़ा अचम्भा और क्रोध हुआ।

मैं देवता के सामने आ खड़ा हुआ—पैर उठे और चोट खाकर भी वह प्रतिमा निश्चल ही रही।

और अन्धे धर्म के मुर्दा-देवता को लात मारकर घर चला आया तो अब तक इन पत्थरों से घृणा ही करता हूँ मैं।

लीजिये, अब पुजारी महराज के करताल की ध्वनि बढ़ चली है।

शिव शम्भो—जय शिव शम्भो!

और यह शिव-शम्भो की अविराम ध्वनि, मेरे हृदय में भक्ति का सञ्चार करने के बदले प्रबल हास्य का संचार कर रही है। भोले पुजारी बाबा, बुढ़ापे का दामन पकड़ कर भी जितना विकट परिश्रम कर रहे हैं, शायद उतना हम जवान भी न कर सकें....मगर इन पागलों के पागलपन को कौन समझाये। सबेरे-सबेरे घण्टे भर तक बदन धुन लेते हैं चिल्लाकर और दिन को चारपाई पर पड़े हुए शिथिलता से हें-हें-हों-हों किया करते हैं।

पागलपन ही तो है यह।

आखिर छुट्टी मिली, कान के परदों का फटना बन्द हो गया। पुजारी जी के करताल और कीर्तन रुक गये हैं। मैं भी कलम उठा लेता हूँ और...

× × ×

फौलादी पञ्जों में जकड़ी हुई मासूम पपिहरा और उसकी अस्मत लूटने पर आमादा शैतान रसूल। क्या करे पपिहरा, क्या न करे? कोई उसका सहायक नहीं...गांव सजग है और पपिहरा की चीखें भी सुनी हैं उसने, परन्तु लगता है जैसे महानिद्रा में लीन हों सारे ग्रामीण। कोई उसको बचाने नहीं आया। पहाड़ जैसे रसूल से सभी

डरते थे सो साँप के बिल में कौन हाथ डा...

'रसूल भैया, रसूल भैया....' चीख रही थी पपिहरा।

'शैतान...मुझे भैया क्यों कहती है !' कहकर रसूल ने दो तमाचे जड़ दिये पपिहरा कि गालों पर कि पाँचों उगलियों के दस निशान हस्तरेखा की तरह उभर आये, लाल-लाल।

पपिहरा की आँखें आँसू उगलने लगीं। अपनी बेबसी देखकर रोने लगी वह। बोली—'लो ! कर लो मनमाना...मैं कुछ न बोलूँगी...जो जी में आये करो, सोया हुआ गाँव, रोती हुई मैं और हट्टे-कट्टे तुम—ले लो अपना बदला। एक बेबस लड़की पर खूब दिखाओ अपनी मर्दानियत !.. शैतान की सवारी करके आये हो रसूल भैया तुम ! खुदा कसम, मैं कुछ न बोलूँगी....'

कहकर पपिहरा निश्चल पड़ गई। पपिहरा को कसे हुए रसूल के मजबूत हाथ एकाएक ढीले पड़ गये। अपनी मर्दानियत पर कीचड़ आते देख उसका पुरुष सजग हो गया। उसने पपिहरा को छोड़ दिया। उद्वेग में भर कर अपना मस्तक पकड़ कर रह गया वह।

'रुक क्यों गये रसूल भैया ?...' बोली वह—'मैं तैयार हूँ....जो बचपन से तुम्हें भैया पुकारती आ रही थी, वह आज तुम्हें अपना सब कुछ देने को तैयार है। अपने शैतान से कहो कि आगे बढ़े—मुझे लूटे-मुझे बरबाद करे...अपनी बहन की अस्मत तुम लूटो भैया और आसमान पर खड़ा हुआ खुदा तुम्हारा यह खेल देखकर काँपे—जल्दी करो....'

'चुप रहती है कि नहीं पपिहरा !...' चिल्लाकर बोला रसूल—'वर्ना मैं तेरी जीभ खींच लूँगा....'

'मुझे मार डालो रसूल भैया ! खुदा कसम, मुझे जीने की चाह नहीं रही... दुनियाँ में मेरा है ही कौन ? एक तुम थे, सो तुम भी आज हैवानियत से लबरेज हो... बेसहारों का सहारा मौत है.... मुझे मार डालो...'

पपिहरा की बातें तीर-सी चुभी जा रही थीं रसूल के कलेजे में

और वह प्रतिक्षण अधिकाधिक वैकल्य से भरता जा रहा था।

उसने खींचकर पपिहरा को अपने कलेजे से लगा लिया। बोला—'पपिहरा! मेरी बच्ची!' आगे कुछ न कह सका वह। आँखें भर आईं, दिल लाख-लाख धड़कनें लेकर उछलने लगा।

पपिहरा बेजान पुतली की तरह उसके कलेजे से सटी रही, और रसूल उसके सर पर हाथ फेरता रहा।

'अब रोती ही रहेगी पपिहरा तू या चुप भी होगी कभी....' रसूल ने कहा—'ले सो जा तू...चुपचाप सो जा....तेरी कसम अब जो शराब छुई तो तू मेरा गला काट लेना...'

रसूल ने पपिहरा को खटोले पर लिटा दिया और उसके ऊपर कथरी डाल दी। दरवाजा खुला था। बाहर आने लगा तो दो छायाओं को देखकर चौंक पड़ा।

पूछा—'कौन है?'

'मैं हूँ रसूल भाई!...' उत्तर मिला।

'अरे छोटे भैया तुम?....कब से खड़े हो यहाँ...'

'बड़ी देर से...' कैलाश बोला।

'ये साहब कौन हैं?....'

'ये हैं मेरे दोस्त—गाँव घूमने आए हैं...दीपक नाम है इनका.... चाँदनी रात थी, सो इन्हें घूमने की इच्छा हो आई। हम दोनों इधर आये तो देखा कि तुम....'

'तुम क्या सब कुछ देख चुके हो छोटे भैया!...' पूछा रसूल ने।

'हाँ .. तुम तो ऐसे नहीं थे रसूल भाई! बुरे के लिए बुरे और भले के लिए भले थे तुम...मगर आज तुम पर क्या पागलपन सवार हो गया था?...'

'पागलपन?...' रसूल बड़ी करुण हँसी-हँसा—'पागलपन ही कह लो इसे छोटे भैया!....मगर जानवर भी कभी क्या पागल हो सकते हैं? मैं आज सचमुच जानवर बन गया था....आओ इस चबूतरे

पर बैठ जाओ—तुम भी बैठो दीपक भाई....'

सब लोग चबूतरे पर बैठे। बड़ी देर तक बातें होती रहीं।

× × ×

दूसरे दिन। तालाब की सीढ़ियों पर बैठा हुआ दीपक, सामने से बरगद की आड़ में डूबते हुए सूरज को देख रहा था। तभी किसी ने पीछे से आकर उसकी आंखें बन्द कर लीं। चौंक पड़ा वह, जैसे तमाम शरीर में बिजली सनसना उठी हो।

उसने अपना हाथ बढ़ाकर आँखें बन्द करने वाले का हाथ पकड़ लिया। कितना मुलायम था वह हाथ, जैसे सांप का बदन! दीपक ने हाथ उठाकर आँखें खोलने का प्रयत्न किया तो बन्द करनेवाले ने और कस लिया। दीपक ने झटका दिया...कोई भद्द से उसकी गोद में आ गिरा और आंखें खुल गईं। देखा—तो पपिहरा थी।

'अरे तुम ?....' बोला दीपक।

'चलो हटो!' सँभलती हुई पपिहरा बोली—'बड़े जोर दिखाने वाले बने हो। कहां तो मैं आई थी तुमसे कहानी सुनने, कहां तुम लगे मुझे झटकने...

'कहानी सुनोगी ?....' पूछा दीपक ने।

'सुनूँगी क्यों नहीं ? इसीलिए तो आई हूँ....' पपिहरा दीपक से सटकर बैठती हुई बोली—'अब जल्दी से शुरू कर दो...'

दीपक का हृदय आज पपिहरा को देखकर न जाने क्यों धड़क रहा था ? प्रेम उसने कभी किया नहीं था परन्तु आज जैसे कोई उसे कोड़े मार-मार कर प्रेम करने को अमादा कर रहा था।

बोला वह—'सुनो....एक जवान था...'

'और ?....'

'और एक लड़की थी....'

'कैसी ?'

'ऐसी!...' कहकर दीपक ने पपिहरा की ठुड्ढी पकड़ ली।

'धत्!...आगे कहो....' बोली पपिहरा।

'दोनों तालाब के किनारे बैठे थे—पास-पास....'

'एकदम पास-पास बैठे थे क्या ?....'

'हाँ....'

'कितने पास ?....'

'इतने !...' दीपक ने खिसककर पपिहरा को बगल में दाब लिया और उसका हाथ अपनी हथेली पर लेकर मादक गति से दबाया।

'अरे !....' पपिहरा चौंककर बोली—'अच्छा तब ?'

'युवक ने लड़की का हाथ पकड़ लिया....' दीपक ने कहा—'और उसे यों लपेट लिया...'

'यों !...' काँपती आवाज में पपिहरा ने कहा, जब दीपक ने बरजोर उसे अपने सीने से दबा लिया—'तुम्हारी कहानी तो बड़ी-वैसी है जी...यह देखो, मेरा कलेजा धड़कने लगा....' पपिहरा ने दीपक का हाथ अपने उछलते सीने पर रख लिया।

'और तब युवक ने जानती हो क्या किया ?....' दीपक बोला।

'क्या किया ?...'

'यह !'

'एक जलता अङ्गारा पपिहरा के मासूम होठों पर गिरा।

वह घबड़ाकर दीपक से और लिपट गई। बोली—'दीपक ! यह क्या है ? यह कैसी कहानी है ?'

दीपक कैसे समझाये उसे कि यह उसके दिल की कहानी है....



देवीजी ने आकर बाहरी दरवाजा खोल दिया है और मधुरता भरकर कहती हैं—'बाहर धूप आ गयी है। चारपाई डाल दी है—चलकर उसी पर बैठो....'

जाड़े के इस ठिठुरते सबेरे में धूप तो अमृत जैसी लगती है।

सो मैं भी कलम रोककर उठ खड़ा होता हूँ...पैर की कमजोरी कम्पन ला देती है शरीर में...देवीजी बगल में आकर मुझे सँभाल

लेती हैं। मैं अपना सारा बोझ उनके कन्धों पर डाल देता हूँ और दरवाजे की ओर बढ़ता हूँ।

ये नारियाँ जितनी ही कोमल होती हैं, उससे बढ़कर आश्चर्यजनक सहारा भी दे देती हैं, कभी-कभी।

कितना मधुर है यह सहारा ?

दरवाजा लाँघकर चारपाई के पास पहुँच गया हूँ। बदन में धूप लगी है तो ऐसा मालूम होता है कि कोई गरमागरम जवानी लेकर मेरे बदन से आ लिपटा है।

बहुत बड़ी राहत मिली है।

एक तरफ से राहत मिली है तो दूसरी तरफ का सहारा छूट गया है। देवीजी मुझे चारपाई पर बिठाकर अन्दर जाने लगी हैं—तो मैं कहता हूँ—'जरा उसे दे जाना तो....'

वे—'किसे ?'

मैं—'उसी कापी को, जिसे अभी लिख रहा था...'

वे—'अब तो तुम्हें आराम करना ही पड़ेगा....'

मैं—'कुछ लिखूँगा नहीं—केवल पढ़कर देखूँगा कि क्या लिख मारा है ?'

कुछ न बोलकर वे अन्दर चली जाती हैं।

मेरे दरवाजे के सामने ही पक्की सड़क है, जिसकी छाती पर कुछ कम एक हजार घाव हैं। इस सड़क के उस पार एक छोटा-सा कच्चा मकान है। छाजन खपरैल का है और दरवाजे बाँस के बने हैं।

इस बाँस के दरवाजे के अन्दर दो जवानों का एक छोटा-सा परिवार रहता है...एक है युवक, जो गरीबी के दिन मजदूरी करके काटा करता है—और दूसरी है उसकी युवती पत्नी, जो पति की कमाई पर रोज-रोज नये शृङ्गार किया करती है—गोरी-सी है, कद लम्बा है, हृष्ट-पुष्ट भी है परन्तु उसे मुटासा नहीं कह सकते। सौन्दर्य में वैकल्य एवं जवानी में एक आकर्षण भरी इस युवती को मैं अक्सर देखा करता हूँ—जी चाहता है देखता ही रहूँ और आँखों

की पलकें कभी ढँपे ही नहीं।

मैं भी बड़ा ही विचित्र आदमी हूं। ऐसे आदमी आपने बहुत कम देखे होंगे, जो देखें परन्तु दिल में दर्द न पालें—जो नजरें लड़ायें परन्तु चोट न लगे जो तीर खायँ मगर घाव न हो।

आज भी चारपाई पर बैठे-बैठे उसी ओर देख रहा हूं। दरवाजे पर पीली धोती पड़ी है, जो एक पन्थ दो काज साध रही है—सूख भी रही है और परदे का काम भी कर रही है।

और उस आकर्षक परदे के किनारे पर एक सलोना चेहरा बाहर निकला हुआ है। मस्तक पर बड़ी-सी ठिकुली चमक रही है। मुंह पर घूंघट भी है परन्तु मैं देख रहा हूं कि मदभरी दो दाहक आँखें एकटक बिना पलक झपकाये मेरी ओर देख रही हैं— जैसे दो तीर चुभे जा रहे हैं, रात भर बुखार से तपे मेरे कलेजे में।

फिर भी मैं चुपचाप बैठा हूं। न जरा भी हिला हूं, न एकाध ठण्डी सांस ही ली है। मजा तो तभी है जब चोट खाय और 'सी' न करे, जब तीर घुसे और हंसता रहे।

उसका नाम भी बता दूं आपसे।

पूछिये मत....बड़ा प्यारा नाम है—इतना प्यारा कि यदि नाम का भी कोई आकार होता तो कलेजे से लगा लेने के काबिल होता।

तो उसका नाम है 'पियारी'....प्यारा का स्त्रीलिङ्ग!

एक बात और है।

इन परदे के पीछे रहनेवालियों के नाम में चाहे चाँद जैसा आकर्षण हो परन्तु सूरत इनकी दिल फरेब ज्यादा नहीं हुआ करती। हुस्न की दिल फरेबी ही हो तो परदे की क्या जरूरत!

मगर अपनी 'पियारी' ऐसी नहीं है। उसके नाम में आकर्षण तो है ही, साथ ही उस परदे के पीछे उसका मादक सौन्दर्य भी, छलकती जवानी भी है।

मेरे अपने विचार से यह परदा नारियों के लिए जरूरी है। औरतों में इतनी बदसूरती होती है कि बगैर परदे के उनका नग्न-

सौन्दर्य देखकर आप भी 'दिल फेंक' नहीं बन सकते।

हाँ तो, मैं एकटक उस परदे की रानी को देख रहा हूँ और वह भी उसी तरह निश्चल है। दोनों ओर के दो प्राणी आँखों-आँखों में जाने क्या बातें कर रहे हैं।

मगर मैं इन आँखों की भाषा कभी समझ नहीं सका—यही मुझमें एक बड़ा अभाव है। मैं जानता ही नहीं कि ये बेजबान आँखें कैसे बोल लेती हैं? फिर भी लोग कहते ऐसा ही है।

और वह मेरी ओर देखती ही जा रही है—अबतक देख रही है। नाजुक कलाई उठाकर उसने मस्तक पर का घूंघट जरा-सा और ऊपर खिसका दिया है, जिससे चार अंगुल तक सिन्दूर से भरी हुई लाल माँग दिखाई पड़ने लगी है। कलाई की हरकत से मासूम चूड़ियाँ चीख उठती हैं, उनकी झनझनाहट सड़क पार करके यहाँ तक चली आई है।

'उफ्! यह मैं क्या देख रहा हूँ?'

उसने अपनी जीभ निकाल कर, अपने पतले-लाल होठों पर फेरा है उन्हें चाटा है।

जाने कौन इशारा है यह। मैं तो कभी इशारों की बात समझ नहीं सका—फिर आज ही कैसे समझूं?

कोई जबान से कुछ कहे तो मेरे सचेष्ठ कान सुन भी सकें—परन्तु सुना करता हूं कि औरतों की आँखें और इशारेबाजियाँ जितनी कातिल होती हैं, उतनी ही उनकी जबान मूक होती है।

वे बोलती कम हैं, खासकर अतृप्त आकांक्षा की बातें तो वे कहती ही नहीं।

मगर वह इशारा क्या था?

क्या उसकी कोई इच्छा है? क्या वह कुछ चाहती है मुझसे?

मगर चाहती क्या है?

पति उसका हट्टा-कट्टा है—देखने में भी बुरा नहीं है। फिर यह लालसा क्यों? क्या गरीबी और अशिक्षा में पली हुई नारी योंही

वासना का खेल खेलने की अभिलाषिनी रहती है ?

मैं उसकी ओर से आँखें फेर लेता हूँ। हृदय में एक स्पष्ट घृणा की छाया झलक उठती है। इन नारियों में मैं शालीनता एवं सौम्यता देखने का इच्छुक हूँ। चरित्रहीनता के मामले में उन्हें आगे पग उठाते हुए देखता हूँ तो दिल 'हाय-हाय' करने लगता है अपने आप।

यह देवीजी आ रही हैं। हाथ में मेरे उपन्यास की हस्तलिपि लिए।

'बड़ी देर कर दी तुमने ?' कहता हूँ मैं।

वे—'खोजने लगी तो मिलती ही न थी...मिली भी तो आलोक चिल्ला पड़ा...'

मैं—'क्यों ?'

वे—'पैर पर सील गिरा ली थी....'

मैं खीझकर कहता हूँ—'सीले-लोढ़े से क्या पीस रहा था बेईमान....'

तेज स्वर सुनकर वह चौंक पड़ती हैं और विनती करके कहती हैं—'इतने जोर से मत बोलो, रात भर तो बेहोशी में पड़े रहे हो...'

मैं शान्त हो जाता हूँ—शान्त होना ही पड़ता है। देवीजी का अनुरोध मुझसे टाले नहीं टलता, चाहे और सभी कुछ टाल दूँ।

'चाय पीयोगे ?' पूछती हैं वे।

'चाय ?...' मैं विस्मित होकर कहता हूँ।

चाय का पीना मैंने तब से बन्द कर रखा है, जब से पैसे ने मेरा साथ छोड़ दिया। दूध, चीनी वगैरह का फालतू खर्च कौन बरदाश्त करे और इतने पैसे आवें कहाँ से ? दूध-चीनी के अतिरिक्त आमलेट या बिस्कुट भी तो चाहिये।

गुजरे दिनों की याद आती है तो कलेजा मुंह तक आकर लौट जाता है। मैं पूछता हूँ देवीजी से—'चीनी-चाय का प्रबन्ध कर लिया है तुमने ?'

वे—'हाँ, कल हरीप्रसाद से पचीस रुपये उधार लिए थे न ?' उत्तर देती हैं।

मैं चुप रह जाता हूँ।

'पियोगे ?...' प्रश्न होता है।

'नहीं ?...' कहता हूँ मैं। दिल को थाम रहा हूँ। घृणा का अम्बार न उठे....मगर तूफान की गति के आगे टूटे पेड़ की क्या हस्ती ?

'पी लो थोड़ी-सी, एक कप ही सही....'

'नहीं...सोचता हूँ, छूटी हुई आदत को फिर क्यों मुँह लगाऊँ.... हरीप्रसाद के रुपये कोई जनम भर तो चलेंगे नहीं...नहीं रहने दो...'

मैं इस तरह गम्भीर हो जाता हूँ कि देवीजी आगे कुछ बोल नहीं पातीं। तभी आ पहुँचा है हरीप्रसाद—मुँह पर एक विचित्र मुस्कराहट लिए। आज की उसकी मुस्कराहट देखकर न जाने क्यों दिल जल उठा है ?

ऐसी भेद-भरी मुस्कराहट तो वह कभी नहीं हँसता था।

देवीजी खड़ी रह गई हैं ? पहले तो वे उससे परदा किया करती थीं परन्तु पचीस रुपया उधार देनेवाले से अब कैसा परदा ? हरीप्रसाद आकर चारपाई पर बैठ गया है, पूछता है—'कहो भाई ! कैसे हो ?

मैं—'अच्छा हूँ....'

वह—'सुना, कल तुम्हारी तबीयत ज्यादा खराब हो गई थी....'

मैं—'हाँ....मगर कोई ऐसी बात नहीं थी—'

वह—'तुम भी कितने विचित्र हो, भाभी न बतातीं तो मुझे तुम्हारी स्थिति का पता ही न चलता—इस तरह गुमसुम रहना अच्छा नहीं—समझे ! तुम्हारे नजदीक रहता हूँ, तुम्हारा मित्र भी हूँ, फिर हमारे बीच दुराव नहीं होना चाहिये...'

उसकी आँखों के पीछे छिपी हुई विनाश की भावना मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। आफत की मारी हुई, गरीबी एवं अभाव की तड़पन में दिल

गुजारनेवाली एक लेखक की पत्नी से उसे क्या आकर्षण मिल रहा है ? कुछ समझ में नहीं आता। पाँच-पाँच बच्चों की माता प्रजनन की मशीन बन सकती है परन्तु किसी के आकर्षण का केन्द्र नहीं।

परन्तु यह हरीप्रसाद ! क्या कहूं इसे—पचीस रुपये उधार देकर हमारी तो जबान बन्द कर दी है इसने।

'देखो भाई।' कहता है वह—'जब कभी जरूरत पड़े तो निःसंकोच माँग लिया करो—न हो तो तुम्हीं चली आया करो भाभी ! ये तो आने से रहे...'

कहकर वह निशाचर उठ खड़ा हुआ और जाने की भंगिमा में 'अटेंशन' हो गया है। नमस्कार करता है, मैं भी हाथ उठा देता हूं...और वह एक भेदक दृष्टि देवीजी की ओर फेंकता हुआ 'क्लोमार्च' करता चला जाता है। मैं देवीजी की ओर देखता हूं ! जो पैशाचिक भावना मैंने हरीप्रसाद की नजरों में देखी थी, उसकी कोई भी छाया उनकी आँखों में नहीं है।

'देखो !...' मैं बातचीत का सिलसिला शुरू करके कुछ कहना चाहता हूं।

वे—'कहो !' उत्सुक हो पड़ती हैं।

मैं—'तुम अब कभी हरीप्रसाद के यहां मत जाना....'

वे—'कभी नहीं !...इस बार भी जो चली गई उसके लिए क्षमा चाहती हूं—रुपये पाते ही उसे दे आना...'

उसी समय रोता हुआ आ पहुँचता है आलोक !

तोतली बोली में, एक-एक बात पर 'ब्रेक' देता हुआ कहता है—'अम्मा ! त्रिलोक... छाले ने मुझे....माला है....'

लीजिए ! दो अंगुल के बच्चे भी कैसी अनोखी गालियां बकने लगे हैं कि सुनकर आश्चर्य करना पड़ता है। कोई भला आदमी सुने तो क्या कहे ? इतने बड़े लेखक के बच्चे और इतनी भद्दी गालियां बकें ?

मगर चारा ही क्या है ? आस-पास के लड़के इतने बेईमान हैं कि पूछिए मत— और संगत का असर मासूम बच्चों पर बिना पड़े रहता नहीं—इसीलिए ये बच्चे इतनी गालियाँ सीख गये हैं ?

देवीजी कहाँ तक सबको देखती फिरें ?

और मैं हूँ कि दुनियादारी से एकदम अलग... गृहस्थ-योगी समझिये मुझे, लेखनी की साधना में ही सब कुछ भूल गया हूँ।

इस समय मुझे ग्लानि हो रही है—छोटे आलोक के निर्दोष मुख से दोषपूर्ण वाक्य सुनकर। मैं पिता हूँ—इन लड़कों का, जो आगे चलकर प्रगतिशील युवक बनेंगे, मुझे ही तो देखना-भालना है।

मगर सोचता हूँ कि ये बच्चे अपनी प्रेरणा से ही प्रगतिशील बन सकेंगे—पिता के संरक्षण की क्या आवश्यकता है इन्हें।

यह सब झंझट सर पर मोल ले लूँ तो लिखना-पढ़ना भाड़ में चला जाय और ये बच्चे भी भूख के मारे दो चार दिन में ही टें बोल दें।

चलने दीजिए जैसे चल रहा है, बड़े होकर अपने ही सुधरेंगे सब....मेरा कुछ न कुछ अंश तो होगा इनमें ?

देवीजी ने आलोक को गोद में उठा लिया है और उसे चुप कराती हुई अन्दर जा रही हैं।

× × ×

जमीन और आसमान की सन्धि पर डूबता सूरज अधखुली आँखों से दीपक और पपिहरा को देख रहा था। दीपक बैठा था तालाब की ऊँची सीढ़ियों पर और पपिहरा बैठी थी दीपक की बगल में। जवानी के आलम ने शर्म पर विजय पा ली थी...दोनों घुल-मिल गए थे थोड़े ही परिचय में।

'अच्छा जी, तुम शहर में रहते हो न ?....' मदभरी आँखें एक क्षण के लिए दीपक के नेत्रों में डालकर पूछा पपिहरा ने।

'हाँ'

'भला क्या करते हो तुम वहाँ ?

'पढ़ता हूँ...' दीपक ने उत्तर दिया।

'क्या पढ़ते हो? किस्से—कहानियाँ?'

'नहीं! मैं यूनिवर्सिटी में पढ़ता हूँ...'

'जाने क्या कहते हो तुम!....' बोली पपिहरा—'कैलाश भैया भी जब से शहर में पढ़ने लगे, तब से ऐसी अलबी-तलबी बोलते हैं कि दैया रे, कुछ समझ में नहीं आता?'

'तुम उसे नहीं समझ सकती पपिहरा?'

'अच्छा जी, रहने भी दो—समझ क्यों नहीं सकती....तुम शहर में पढ़ते हो, क्या इतना भी मैं नहीं समझ सकती! मगर यह तो बताओ कि अब तक तो तुम शहर में पढ़ रहे थे फिर गांव में आकर यह पढ़ना कब से सीख लिया....'

'कैसा पढ़ना?'

'खुदा कसम! क्या तुमने मुझे मुहब्बत का सबक नहीं पढ़ाया?' कहती-कहती पपिहरा ने शर्म में डूबकर दोनों हथेलियों से अपना चेहरा बन्द कर लिया।

दीपक ने धीरे से पपिहरा की हथेलियाँ उसके चेहरे पर से हटा दीं। गोरा-सा गुलाब शर्म की आंच खाकर तपे लोहे जैसा लाल हो रहा था। देखकर दीपक के हृदय में लहराता हुआ प्रेम—एकबारगी ही सचेत हो उठा।

उसने पपिहरा की छोटी-सी ठुड्ढी ऊपर उठाई। फिर धीरे से पूछा—'तुम जानती हो पपिहरा....'

'क्या?'

'यही कि मुहब्बत किसे कहते हैं! प्यार कैसा होता है?'

'जानती तो नहीं थी मगर तुम्हारे साथ ने मुझे बता दिया....'

'कैसे?'

'खुदा कसम! पिछले कई दिनों से मैं हरवक्त बेकल रहती हूँ.... खाना अच्छा नहीं लगता—कुछ भी अच्छा नहीं लगता, अच्छे लगते हो तो सिर्फ तुम, तुम्हारी सूरत, तुम्हारी बातें और...और....'

'और क्या ?....'

'और तुम्हारा साथ !...' धीरे से कटाक्ष का तीर चलाकर बोली वह—'हाय अल्ला ! तुम तो जैसे कुछ समझते-जानते ही नहीं...अच्छा, अब मुझे छोड़ो – जाने दो...आज बड़ी जल्दी शाम हो गई....'

भोली पपिहरा क्या जाने कि मिलन कि घड़ियाँ पर फड़फड़ा कर बड़ी जल्दी उड़ जाती हैं....दीपक की बगल में बैठी-बैठी वह समय का ज्ञान ही भूल गई थी।

'थोड़ी देर और बैठो न...'

'नहीं जी ! अब मैं नहीं रुक सकती...रसूल भैया आ गये होंगे तो लगेंगे भभकने।'

'पपिहरा !....' दीपक ने पपिहरा को अपने पास खींचकर कहा—'जी चाहता है हमेशा तुम्हारे पास रहूँ, तुम्हारे बदन से लगा रहूँ...'

'अच्छा जी ! तुम हमारे बदन से लगे रहना चाहते हो ?...' शोख हँसी हँसकर बोली पपिहरा—'तो अब जल्दी से तुम कपड़ा बन जाओ फिर मैं तुम्हें सिलाकर, सलवार या चोली बनाकर या ओढ़नी बनाकर सर पर डाल लूंगी—फिर लगे रहना मजे में मेरे बदन से....'

दीपक हँस पड़ा। बोला—'अच्छा जाओ अब तुम....'

पपिहरा उठ खड़ी हुई। दोनों के नेत्र मिले, आग लगी, लपटें उठीं और दोनों के हृदय धड़कने लगे।

दीपक ने एक बार पुनः पपिहरा को अपने हाथों में बांध लिया और एक जलता चुम्बन उसके अधरों पर रखकर अलग हो गया।

'यह क्या किया तुमने ?...' अपना होंठ सहलाती हुई पपिहरा बोली।

'चोट लग गई क्या ?'

'और क्या ? चोट लगी और दर्द कलेजे तक उतर गया...बड़े

बेदर्द हो जी !... लो मैं चली...'

'अब कब भेंट होगी ?'

'खुदा जाने !...'

'तब तो मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा....'

'पकड़ के रखोगे क्या ?...'

'हाँ !'

'पकड़ो तो जानें ?' कहकर पपिहरा भागने लगी परन्तु भाग न सकी। दीपक ने उसे दौड़कर पकड़ लिया और इस तरह अपने बदन से बाँध लिया कि वह बन्धन पपिहरा के मासूम बदन पर कोड़े की मार जैसा कसक उठा।

'बोलो, कब मिलोगी ?' दीपक ने पूछा।

'नहीं बताती...'

'नहीं ?'

'नहीं....' पपिहरा ने इनकार कर दिया।

सुनकर दीपक ने अपना बन्धन फौलाद-सा बना लिया। पपिहरा की आँखों से दो बूँदें ढुलक पड़ीं। पता नहीं वे कैसे आँसू थे। बोली शरमाते-शरमाते—'आज रसूल भैया दूसरे गाँव में गए हैं। कल सुबह तक लौटेंगे...'

'तो ?...'

'रात में खा-पीकर आ जाना....'

'इन्तजार करोगी न....'

'हाँ !...' पपिहरा ने इतने धीरे से कहा कि उसे दीपक के ही कान सुन सके।

'जाओ....' दीपक ने उसे छोड़ दिया।

पपिहरा उस पर एक शर्मीली नजर डालती हुई धीरे-धीरे चली गई। रास्ते में मिल गया खलील, पपिहरा के बचपन का साथी। उसे देखकर आगे आ खड़ा हुआ।

'हट !....' पपिहरा बोली।

'ए है ! नबाब की पोती की जरा शान तो देखो....' बोला खलील—'सुभानअल्लाह ! जवानी क्या है आई, रोयें-रोयें में पर लग गये । जानेमन के पाँव अब जमीन से एक बालिश्त ऊपर होकर चलते हैं...'

'अरे खलील !'

'क्या है ?...'

'तू तो बरगद की पेड़ की तरह इतना चौड़ा हो गया कि खुदा कसम, देखो सारा रास्ता छेंक लिया है...तेरी मुर्गियाँ आजकल अण्डे ज्यादा देने लगी हैं क्या !....' बोली पपिहरा मुस्कराकर ।

'चाहिए क्या दो-चार अण्डे...' खलील ने कहा—'या कह तो डण्डे ही दे दूँ दो-एक ?'

'रखे रह अपने अण्डे-डण्डे अपने ही पास–मुझे नहीं चाहिए...'

'अब क्यों चाहने लगी तू ?...बचपन के दिन तो गुजर गए न ! अब तो छोटी-सी देह पर जवानी की मेहरबानी हो गई है—धूल की गोद के बदले फूलों का बिस्तर चाहिये तुझे...'

'किसी की जवानी देखकर तेरी आँखें क्यों फूटती हैं !....'

'अरी बुलबुल ! मेरी आँखें क्यों फूटेंगी ? अल्ला के फजल से मुझ पर क्या कम जवानी आई है...यह देख ।' कहकर खलील ने अपना सीना फुलाया और दोनों हाथों को दायें-बायें झटकारा ।

'बस बस रहने दे'—पपिहरा बिगड़कर बोली—'ज्यादा डण्ड-बैठक मत दिखा...हट रास्ते में से, नहीं तो कह दूँगी रसूल भैया से....'

'अरे वाह री रसूल भैया की पपिहरा बहन !—' खलील ने उसे चिढ़ाया—'कमबख्त बोलती ऐसे है जैसे रसूल भैया सिर्फ इसी के बाप के बेटे हों और मेरे कोई नहीं....चल, मैं भी रसूल भैया से कहता हूँ कि...तू...कि तू तालाब के किनारे....'

'क्या ?' चौंककर बोली पपिहरा–'तालाब के किनारे क्या ?'

'बस समझ जा !...मैं सब जानता हूँ....' खलील अंधेरे में तीर

छोड़ रहा था कि शायद किसी निशाने पर जाकर लग ही जाय।

और पपिहरा ने समझ लिया कि खलील ने उसे दीपक के साथ तालाब पर देख लिया है। उसका कलेजा एक क्षण के लिए कम्पित हो उठा—'खलील !...' पुकारा पपिहरा ने दबी आवाज में।

'.......' बोला नहीं खलील, बल्कि और तनकर खड़ा हो गया—मुंह अपना पूरब की ओर कर लिया उसने।

'खलील भाई !...'

'अब आई रास्ते पर....बोल क्या कहती है ?'

'तुमने सब कुछ देख लिया ?'

'हाँ ? जर्रा-जर्रा....रत्ती-रत्ती...'

'मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ....'

'जोड़ !....'

'लो....' पपिहरा ने हाथ जोड़ दिया।

'पैर भी पकड़....'

'अरे चल !' पपिहरा फिर बिगड़ पड़ी—'पैर तो हर्गिज नहीं पकड़ती...'

'तो मैं चला रसूल भैया से कहने...'

'अच्छा लो...' पपिहरा ने झुककर जल्दी से उसका पैर पकड़ लिया।

'ठीक-ठीक ! अब नहीं कहूँगा...अच्छा चल तुझे घर तक पहुँचा दूँ।'

दोनों साथ-साथ चलने लगे।

'पिछड़ती क्यों जा रही है—' बोला खलील।

'तेरी तरह ताड़ जैसे पैर तो है नहीं, कौन कहे तू अपनी पीठ पर लादकर ले चलेगा मुझे—'

'कमबख्त बचपन के दिनों की याद दिला रही है—अच्छा आ, चढ़ पीठ पर....' खलील झुक गया।

पपिहरा उसकी पीठ पर बन्दर की तरह उछलकर जा चढ़ी।

'इतनी जोर से उछली क्यों, बोल! घोड़े की पीठ समझ ली है क्या?' खलील ने हाथ पीछे ले जाकर पपिहरा का सर ठोंक दिया।

'देख, मारेगा तो तेरी पीठ में दाँत काट लूँगी....' बोली पपिहरा।

'अरे बाप रे! शैतान बचपन की एक भी आदत नहीं भूली है अब तक...' कहकर खलील ले चला उसे पीठ पर लादे हुये।

रास्ते में गाँव वाले देखते और चुपचाप चले जाते। उनके लिये यह कोई नवीन घटना नहीं थी। वसीदा दादी के दरवाजे पर जाकर खलील ने पुकारा—'दादी! ओ वसीदा दादी!'

बुढ़िया अन्दर से ही बोली—'कौन है मुआ?....'

'मरें तुम्हारे बाप वसीदा दादी!—' बोला खलील—'जरा बाहर आकर देखो, रसूल भैया ने एक बोरा चावल तुम्हारे लिए भेज दिया है।'

'चावल!'—आश्चर्य करती हुई बुढ़िया बाहर निकली तो खलील की पीठ पर बोरे की तरह लदी हुई पपिहरा को देखा।

'लो सँभालो दादी, अपना बोरा—' कहकर खलील ने पपिहरा को बोरे की तरह बुढ़िया के आगे पटक दिया और हँसता हुआ भाग गया।

जमीन पर से उठती हुई पपिहरा हाय-हाय करने लगी।

'क्या हुआ री छोरी?'

'कमर टूट गई दादी....'

'हाय रे! एक ही धक्के से जब तेरी कमर टूटने लगी तो जिन्दगी कैसे गुजारेगी रे हरामी?'

'मैं क्या करूँ दादी! देखा नहीं उस पिल्ले का, कितनी जोर से पटककर भागा है....'

'कमर की कसरत किया कर रे आज से—समझी!' बुढ़िया बोली।

''चलो हटो दादी! बड़ी वैसी हो!' कहकर पपिहरा धीरे-धीरे

चलती हुई अपनी झोपड़ी में आई ।

सीधे चारपाई पर जा लेटी वह । आज वह अकेली थी । रसूल मेहमानी में गया हुआ था । सोचने लगी पपिहरा—काली-काली भयावनी रात, झोपड़ी की काट खाने वाली दीवारें, भौंकते हुए कुत्ते और खटोले पर पड़ी हुई, आँखों में नींद की खुमारी और दिल में लाख-लाख डर लिए वह, कैसे सारी रात काट सकेगी ।

क्यों न वह वसीदा दादी को अपने पास सुलाये ? मगर उसकी दादी का गला, बुढ़ापे की कमजोरी पाकर खांसी का इस तरह शिकार बन गया है कि रात भर खों-खों करती रहेगी वह तो नींद कैसे आ सकेगी पपिहरा को ?

तो....दीपक !....दीपक तो आने को कह गया है ? क्या वह सचमुच आयेगा ?

आयेगा तो इस अँधेरे में कहाँ बैठेगा ? झोपड़ी में दीपक तो है परन्तु उसके पेट में जरा भी तेल नहीं रह गया है...तो पपिहरा जलाये क्या ? उजाला क्या करे—खाक !

पपिहरा खटोले पर पड़ी रही । सोचती रही । दोपहर की रोटियाँ रखी थीं परन्तु कुछ खाने को जी नहीं चाहा उसका !

बाहर का अँधेरा धीरे-धीरे घना हो चला । आसमान पर दो-चार सितारे निकल आये । चाँद तो रात भर तक मातम मनायेगा—अमावस्या है न !

बड़ी देर बीती—पपिहरा दीपक के विषय में ही सोचती जा रही थी । दीपक ने इन दो-तीन दिनों में जो कुछ दिया था, वह उसे कोई भी नहीं दे सका । दीपक के दो मादक चुम्बनों ने जैसे उसके यौवन का रेशा-रेशा सजग कर दिया था ।

'पपिहरा !'—किसी ने दरवाजे के बाहर से धीरे से पुकारा ।

तो वह इस तरह चौंक पड़ी कि कलेजा धड़कने लगा । धीरे से खटोले पर से उतर कर खड़ी हो गई वह ।

बोली —'आओ न...'

दीपक ही था वह। अन्दर आकर बोला—'अँधेरा क्यों कर रखा है ?'

'ताकि तुम्हें देख न सकूँ....' बोली पपिहरा।

'क्यों ?....'

'शर्म लगती है जो...'

'कहाँ हो तुम। किधर हो—जरा मेरा हाथ तो पकड़ो....' दीपक को कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था।

पपिहरा ने उसका हाथ पकड़कर खटोले पर ला बिठाया। दीपक ने उसे खींचकर अपनी बगल में बिठा लिया।

'यह अँधेरा देख रही हो पपिहरा ?'

'हाँ, बड़ा अच्छा लग रहा है....' बोली वह। उसके शरीर का सारा बोझ दीपक की गोद में आ रहा।

'अकेली हो....'

'हाँ।'

'और दीया ?'

'तेल नहीं है....'

'अँधेरे में बैठना क्या ठीक होगा ?' दीपक ने पूछा।

'आज तो रात भर तक तुम्हें यहीं रहना है—' वह थी।

'क्यों ?'

'मुझे डर लगेगा...'

'और....'

'कलेजा धड़केगा....'

'और...'

'दिल तड़पेगा....'

'और...'

'अच्छा जी। तुम्हारा यह और-और तो खुदा कसम, ताड़ की तरह बढ़ता चला जा रहा है....बोलो, रहोगे रात भर या नहीं ?...'

'रहूँगा...'

'मुझे सोती छोड़कर भाग तो नहीं जाओगे ?'

'नहीं...'

'तो सो जाओ इस खटोले पर....' बोली वह।

'और तुम...'

'मैं नीचे बोरा बिछाकर सो जाऊँगी।'

'मेरी तुमसे नहीं निभेगी....' बोला दीपक—'मुझे रोकना हो तो तुम भी इसी खटोले पर लेटो....'

'अच्छा जी! इस अँधेरे में साँप के साथ कौन लेटेगा? कहीं डँस लो तो दिल की धड़कन ही बन्द हो जाय...'

दीपक कुछ बोला नहीं। वह कुछ सोचने लगा था। पपिहरा भी कुछ सोचने लगी।

रात की बेला, पास-पास बैठे हुए दो शरीर और उनमें लहराती हुई जवानी की मादक मदिरा।

बेचैन हो रहे थे दोनों।

'पपिहरा!...' उसका हाथ पकड़कर बोला दीपक।

'क्या है?....' उसका स्वर जाने क्यों काँपने-सा लगा था।

'दीया जला दो...'

'तेल नहीं है....'

'बिना तेल के दीया नहीं जल सकेगा?'

'नहीं...'

'मगर इस अँधेरे में तो हम-तुम जल जायेंगे पपिहरा!...' दीपक के हाथ पपिहरा के मदहोश शरीर को अधिकाधिक कसते जा रहे थे।

'जल जाने दो....' पपिहरा जैसे बेहोश-सी हो रही थी।

'पपिहरा! मुझे जाने दो....जाने दो मुझे पपिहरा!....' कुछ सजग-सा होता हुआ बोला दीपक।

'नहीं।' और अब पपिफरा के कोमल हाथों ने उसके बदन को बाँधना प्रारम्भ कर दिया।

'मुझे छोड़ो पपिहरा !....हम-तुम बहे जा रहे हैं...'

'बह चलने दो...'

'कहीं किनारा नहीं मिलेगा...'

'परवाह नहीं...खुदा कसम, तुम बड़े बेदर्द हो....छोड़ के चल दोगे मुझे अकेली !....'

दीपक बेचैन हो रहा था और पपिहरा मदहोश। दीपक भविष्य देख रहा था और पपिहरा तो जैसे वर्तमान को भूल बैठी थी।

'पपिहरा...'

'बोलो !'

'पपिहरा !'

'बोलो न !....'

इस बार दीपक चुप रह गया। उफ् ! यह क्या होने जा रहा है ? दिन के उजाले में जो कुछ बाकी था, क्या वह रात के अन्धकार में होकर ही रहेगा ?

'पपिहरा ?...'

'बोलो भी कुछ !....'

'जलोगी तुम ?'

'हाँ !...'

'डूबोगी तुम ?'

'तुम्हारे साथ ?'

'होश में आओ....'

'बेहोशी ही भली है....'

'बरबादी का रास्ता है यह !'

'मंजूर !....' कहकर पपिहरा सिसकने लगी। मदहोशी का वेग आँखों से आँसू बनकर चू पड़ा।

दीपक ने उसे सीने से चिपका लिया। चुम्बनों की मार खाकर आँखें तो सिसकती रहीं मगर गाल गुलाब की तरह हँस पड़े।

'वह बचो पपिहरा ! डूबो ! जलो !....मैं तुम्हारे साथ हूं.... ऐसा ही हो....' दीपक अस्त-व्यस्त स्वर में बोला—

× × ×

तारिकाओं का टूटना, उफ् ! काठ की यह छोटी-सी कलम भी क्या है कि आसमान के तारे तोड़ लाती है, हिमालय को उठाकर आसमान पर पहुंचा दे सकती है....क्या नहीं कर सकती यह लेखनी ! तभी तो घटना कहाँ से कहाँ पहुँच गई।

एक नजर इधर-उधर देखकर मैं पुनः कागज पर दृष्टि डालता हूं। बहुत काफी लिख चुका हूं....आज, अब तो थोड़ा आराम करना ही चाहिए।

'एक बात कहनी थी...' मीठी-सी आवाज सुनता हूं।

सर उठाता हूं तो देवीजी बगल में खड़ी हैं। बदन की मैली धोती में चार-चार पैबन्द ऊपर से दिखाई पड़ रहे हैं। गोरा रंग भूख की आग में झुलसकर पीतिमा धारण कर चुका है। गाल छुहारे की शुष्कता को भी मात दे रहे हैं। होठों पर मुस्कान के बदले करुणा का मूक विलाप छाया है। मासूम कलाइयाँ सूखकर पेड़ की भयावनी टहनी बन गई हैं और उनमें पड़ी हुई काली चूड़ियाँ ऐसी लगती हैं, जैसे कई-कई नागिनें लिपटी हुई हिल-डोल रही हों।

दैन्य का नग्न प्रदर्शन है। परन्तु मैं तो लेखक हूं न, बालू में से तेल निकालने वाला। सो दैन्य के आवरण में से सौन्दर्य का आकर्षण खोज निकालना कौन-सी बड़ी बात है मेरे लिए।

लोग कहते हैं कि चक्की में पिसकर ही गेहूं के दाने चमकदार मैदा बन जाते हैं। पत्थर पर घिसते ही हिना रंग लाने लगती है। कसौटी पर कसे जाने से ही सोना मूल्यवान बनता है। सच है, बिलकुल सच ! आज देवीजी भी गरीबी की चक्की में पिसकर मैदा जैसी चमकदार हो गई हैं कि हिना का रंग और सोने का मूल्य सब कुछ झख मारे।

'कहो क्या कहती हो ?' मैं कहता हूं उनसे, क्योंकि मुझे देर तक चुप देखकर वह विकल होती जा रही हैं।

वे—'बुरा न मानना, इन बच्चों को भूख से मरते देखने की शक्ति मुझमें नहीं, कहो तो कहीं कुछ काम-धन्धा'—कहकर वे रुआंसी हो जाती हैं।

'ठीक कहती हो तुम !'....बोलता हूं मैं धीरे से, नम्रता से—'तुम मां हो न—और नारी भी...कोमल हृदय है तुम्हारा....तुम जीवन दे सकती हो, पैदा कर सकती हो, पाल सकती हो—परन्तु किसी की मौत नहीं देख सकती। नारी इसलिये तो महान है और पुरुष ? महानीच ! पातकी ! मरे हुए को बेदर्दी से कन्धों पर उठाकर श्मशान ले जाता है, हाड़-मांस की देह को जलाकर राख कर देता है, दस-बीस का खून करके रोज फांसी पाता है....धन्य हो तुम नारी ! और तुफ् है पुरुष की निर्ममता पर....'

मैं देख रहा हूं, उनकी आंखों से आंसू की दो मोटी बूंदें गालों पर उतर आई हैं। वे मन ही मन रो रही हैं....कितनी दुखी हैं वे !

मैं कुछ तेज स्वर में बोलता हूं—'तुम मेरी पत्नी हो-तुम घर में पड़ी सिसक सकती हो, मगर मेरी इज्जत को धूल में मिलाने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं....'

'लोगों ने तुम्हें प्रतिष्ठा दी और तुम्हारा पेट भर गया'—वे कहती हैं—'मगर मुझे और बच्चों को क्या मिला, जिसे हम अपने खाली पेट में भरकर सन्तोष करें ?....'

'देवी !'—मैं जोरों से चिल्ला पड़ता हूं—'मैं कहता हूं कि तुम मजदूरी नहीं कर सकती...जाओ....अभी चली जाओ, मुझे अकेला छोड़ दो...'

बिजली की कड़क के आगे देवीजी की क्या हस्ती ? वे गीली आंखें लिए अन्दर चली जाती हैं। मेरा दिमाग परेशान हो उठता है। आंखें नीले आसमान पर टिककर शान्ति की खोज करने लगती हैं।

अहा ! कितनी पतंगें उड़ रही हैं—किस अदा से हवा पर तैर

रही हैं कि पूछिये मत—जैसे बेला की पंखड़ियाँ छितराकर आसमान पर जा चढ़ी हों। बेला की पंखड़ियाँ और पतंगें।

कितने ही साल पीछे की याद ताजी हो गई है। दिमाग में बेला और पतंग। जवानी के दिनों की अजीब कहानी।

सुनेंगे आप? सुनिये न! थोड़ा कष्ट ही सही।

उन दिनों मैं शादीशुदा नहीं था। जवानी क्या थी—सोडावाटर की बोतल की तरह अपने अन्तर में उफान छिपाये चुपचाप बैठी थी।

उन्हीं दिनों की कहानी है यह! ऊँचे उठने की अभिलाषिनी पतंग मेरे लिए अछूत है—इसलिए कि मेरी उँगलियों को उसे सहारा देना आता नहीं—किसी को ऊपर उठा सकने की शक्ति मुझमें है ही नहीं? मैं पतंग उड़ाना नहीं जानता।

मगर आज, नीले आसमान में सूर्य की चमक और उड़ती हुई कितनी लाल-पीली पतंगें देखकर हृदय डोल उठा है। सोचने लगा हूँ कि उड़ाना तो जानता नहीं, फिर भी प्रयत्न करना तो मानव का परम कर्तव्य है और कर्तव्य से च्युत होना ही सबसे बड़ा अभिशाप है।

नाचती हुई, इठलाती हुई ये पतंगें कितनी अच्छी लग रही हैं, मैं तो बेहाल-निहाल हो उठा हूँ इन्हें देखकर।

मेरी छत के निचले खण्ड पर पड़ोसी का लड़का मंगल छोटी-सी परेती-डोर लगाये 'हत्था' भर रहा है। आकाश में उड़ती हुई पतङ्ग नीचे से एकदम मक्खी की तरह दिखाई पड़ रही है।

परन्तु ऐसी अच्छी कला में मैं अभी तक शून्य ही हूँ। एक न एक कला तो सभी को आती है—मुझे भी दवा देने, नाड़ी देखने और लिखने की कला आती है। यों तो उम्र के लिहाज से मैं बिलकुल बच्चा हूँ—यही उन्नीस-बीस बसन्तों की दुनिया समझिये।

'मंगल!....ओ रे मंगल...' उस परेती वाले बच्चे को मैं पुकारता हूँ।

चौंकता है बच्चा—'क्या है भैया?....'

'है क्या...ला परेती इधर दे।'

'अच्छा! आज इत्ते दिनों बाद उड़ाने की सूझी है।....'

कहकर मंगल ने मेरे हाथ में, उड़ती हुई पतंग का सहारा, यह गोल-गोल परेती थमा दी है। मैं उचकने लगता हूं। परेती कभी इधर करता हूं, कभी उधर। सोचता हूं कहीं पतंग गिर पड़ी तो इस पराजय पर कितनी लज्जा लगेगी मुझे?

परन्तु यह आफत की मारी शैतान पतंग संभाले नहीं संभलती। अनभ्यस्त हाथों का सहारा पाकर हिंडोले की तरह हिल-डोल रही है, गिर पड़ना चाहती है। गिरी तो मंगल सोचेगा कि पहाड़ जैसे उसके भैया को यह दुअन्नी भर की कला भी नहीं आती।

मगर यह लीजिये! गिरी...गिरी... अररर धड़ाम...

परकटी-चिड़िया की तरह बेईमान पतंग सामने के मकान की छत चूमने लगी है। मैं बौखला गया हूं और यह कमीना मंगल ही-ही करके हंसने लगा है। जी चाहता इसके सफेद-सफेद दांत तोड़ दूं।

सामने की छत पर गिरी हुई पतंग को मैं हताश दृष्टि से देख रहा हूं। कुछ करते नहीं बन रहा हैं। जानता ही नहीं कि पतन के समय 'खींचूं या ढीलूं।'

और अब जरा देखिए। वहां देखिये वहां। सामने की छत पर....जहां आफत की मारी पतंग पतन का मजा ले रही है।

उस छत पर चांद खिल उठा है। आप हंसने लगे? सोचते हैं कि कहीं दिन के समय भी चांद-सितारे खिले हैं कभी? कलिकाल है भाईजान! सो सभी कुछ होनी-अनहोनी घट सकती है।

वह चांद सशरीर है—केवल रजतगोला नहीं। देखिये! कितना-सुन्दर लग रहा है। कभी अपनी छत पर गिरी हुई मेरी पतंग की ओर देखता है और कभी आंखों में हताश भरे हुए मेरे मुख की ओर।

जाने कौन हैं? आज पहले-पहल ही तो देखा है उसे। लगता है, मैं बेहोश हुआ जा रहा हूं। एकदम अचैतन्य?

काठ में जड़ी, शीशे के भीतर झाँकती हुई तस्वीर की तरह खड़ा हूँ—चुपचाप बिना हिले-डुले। आँखें अपना काम कर रही हैं। इधर का सम्वाद उधर और उधर का सम्वाद इधर लि या ले जा रही हैं। हृदय की धड़कन बढ़ चली है। जी चाहता है कि परेती फेंककर उछलता हुआ कलेजा कसकर पकड़ लूँ—कमबख्त छिटककर कहीं बाहर न आ जाय।

चाँद के शरीर में कम्पन हुआ है और पतले-पतले हाथों ने आगे बढ़कर मेरी पतित-पतंग उठा ली है। इशारा भी हुआ है कि डोर खींचूँ मैं। परन्तु हाथों में भव्य आकर्षण की अनुभूति से पत्थर बंध गये हैं—छटाँक भर के हाथ मन-मन भर के हो रहे हैं। कैसे खींचूँ 'लगी हुई' इस डोर को ?

मगर खींचना ही पड़ रहा है। किसी तरह खिची-खिची पतंग मेरे पास आ गई है और उसे उठाकर अपने कलेजे से लगा लिया है।

तड़पती-सिसकती हुई एक नजर अपने चाँद की ओर फेंककर और परेती-पतंग मंगल को देकर, मैं धड़ाम से छत के नीचे उतर आया हूँ।

चाँद में इतनी गर्मी होती है, यह आज ही जान पाया हूँ मैं। शायद दिन के समय चाँद उगने का यही परिणाम होता हो !

मस्तक पसीने से भींग गया है।

जाड़े की ऋतु में पसीना—और दिन के समय चाँद !

दोनों घटनायें कितनी विस्मयकारक हैं। परन्तु असम्भव भी सम्भव हो चला है आज के जमाने में—यही तो खूबी है।

कई दिन बीत गये हैं—परन्तु उस मूर्ति की मादकता, उस सूरत का सौन्दर्य, उस चाँद का चाञ्चल्य नहीं भूल सका हूँ मैं। दिल में दर्द, कलेजे में कसक और आँखों में आशा लिए दिनभर में कई-कई बार छत पर जाता हूँ परन्तु देख नहीं पाता उसे।

अभी-अभी छत पर से नीचे आकर बैठा हूँ। एक लड़का आता है। कह रहा है—'माँ ने आप को बुलाया है...जीजी के पेट में दर्द हो रहा है...'

इन पास-पड़ोस के मरीजों से मैं तङ्ग आ गया हूं। एक न एक यमदूत सर पर धमका ही रहता है....कभी किसी के पेट में दर्द है तो कभी किसी के दिल में। नीम-हकीम क्या हुआ, लुकमान का चचा हो गया हूं इन मुहल्लेवालों के लिये।

मैं चल पड़ा हूं उस लड़के साथ।

किसी कमरे में आकर बैठ गया हूं। सामने चारपाई पर कोई 'हैं-हैं, हों-हों' करता हुआ पड़ा है। पतली-सी कलाई पकड़ ली है मैंने।

हृदय में अब भी वही दिन का चांद चमक रहा है और आंखों में वही सौन्दर्य घूम रहा है। विस्मृत हो गया हूं मैं।

पूछता हूं—'कहां दर्द है?'

बीणा की मादक झंकार जैसा उत्तर मिलता है—'पेट में....'

'क्यों?'

'पता नहीं....'

मैं बिगड़ कर कहता हूं—'इतना ज्यादा क्यों खा लिया?'

मेरा उत्तेजित स्वर सुनकर रोगिणी हाय-हाय कर उठी है, पता नहीं दर्द से अथवा भय से। मैं पिघल उठा हूं, अपनी इस व्यर्थ की उत्तेजना पर। आंखें अपने पास उस कराहनेवाली के मुख की ओर उठ जाती हैं।

चौंकता हूं....देखता हूं तो वही...वही चांद पेट-पीड़ा के राहुग्रसन से छटपटा रहा है। उछलती हुई नाड़ी अब तक मेरे हाथ में पड़ी है। मैं उसे कसकर पञ्जों में दबा लेता हूं।

'मैंने देखा नहीं तुम्हें....' पश्चात्ताप भरे स्वर में मैं कहता हूं।

तो वह कहती है—'आंखें फेर लेने वाले भी कहीं देख सकते हैं?...'

इस 'आंखें फेर लेने' के शब्द पर मैं निछावर हो गया हूं।

आस-पास कोई है नहीं। धीरे से पूछता हूं—'तुम्हारा नाम?....'

'बेला....' इतने धीरे से बेला की पङ्खड़ी खुली कि मैं सुनता रहा, देखता रहा।

महीनों हो गये हैं। मैंने उसके पेट का दर्द अच्छा कर दिया था तो अब उसके पास बेरोक टोक, बगैर 'ब्रेक' के जाने लगा हूं।

अब तो हृदय की उड़ान बेहद हो उठी है। हम दोनों एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते। रात जागते भागती है और दिन प्रतीक्षा में सरकता है। बड़ी बेकली है।

मगर हम दोनों एक नहीं हो सकते कभी। शून्य और शून्य मिलकर शून्य भले ही रह जायें मगर एक और एक मिलकर तो 'दो' हो ही जाते हैं। कितना बेईमान है यह समाज ? इसके डर से कोई रोये नहीं, तड़पे भी नहीं, सिसके भी नहीं, आँखों में सागर और दिल में आग लिए जलता रहे।

आज उसने बड़े साहस से कहा है—'चलो कहीं चल दें...'

और केवल बेला के भविष्य का ध्यान कर मैंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया है। किसी तरह दिन का उजाला और रात का अन्धकार बीतता चला जा रहा है। अब तो हमारे और बेला के सम्बन्ध में लोगों की जबानें भी चलने लगी हैं....समाज के नेत्र सतर्क हो गये हैं। बदनामी फैल रही है और मुझे बाध्य होकर अपनी गतिविधि रोक देनी पड़ी है। बेला से मिलना-जुलना भी बन्द कर दिया है और इसलिए दुख-दर्द हजार गुना बढ़ गया है। बेला के लिए मुझे इतना तो सहना ही पड़ेगा।

और आज बेला के दरवाजे का चबूतरा शहनाई की मधुर ध्वनि से गूंज उठा है। शादी है उसकी ? नारी है वह, प्रजनन की मशीन है—तो उसे विवाह तो करना ही पड़ेगा। सो आज उसका विवाह है। दूसरे की होने जा रही है वह। मैं वैकल्य से रो भी नहीं सकता और हँसना तो शायद मेरे लिए बना ही नहीं।

पपिहिरी की आवाज सीधे कलेजे में पैठती जा रही। लगता है जैसे कोई भाला चुभा जा रहा हो। पतंग की डोर टूट रही है आज !

यों यह है बीते दिनों की एक छोटी-सी मादक स्मृति। उन दिन की घटनाओं को जब कभी दिमाग में दौड़ाने लगता हूं तो हृदय

कसक से भर जाता है, साथ ही एक गुदगुदी-सी उठ खड़ी होती है। विभोर हो जाता हूँ।

बहुत हो चुका अब तो। सोचता ही रहूँगा तो यह उपन्यास यों ही अधूरा पड़ा रह जायगा। अब तो लिखना ही चाहिए। आओ लेखनी, आओ सरस्वती, बैठो कलम की नोंक पर।

● ●

अगम अन्धकार के बीच आकाश से टूटी हुई तारिकाओं की क्षणिक ज्योति लुप्त हो चुकी थी।

गाँव सोया पड़ा था। रात्रि की बेला में कुछ ही लोग सजग थे—धीरे-धीरे बहती हुई हवा, आकाश से झाँकते हुए तारे, जागते रहने का सन्देश देते हुए प्रहरी, मालिक का नमक खाकर भूँकते हुए कुत्ते और दूसरों के माल पर हराम का जीवन व्यतीत करने वाले मालेमुफ्त दिले-बेरहम चोर।

पतन की सीमा पार करके, थकावट से चूर-चूर हो पपिहरा और दीपक एक ही खटोले पर सो गये थे। झोपड़ी के अन्धकार में उन दोनों की आकृतियाँ अदृश्य हो गई थीं।

दरवाजा खटका। पहले धीरे से, फिर जरा तेजी से। दीपक की नींद उचट गई। उसने गौर किया। दरवाजा इस बार और तेजी से खटका। दीपक ने पपिहरा को धीरे से जगाया।

'क्या है?'

'कोई दरवाजा खटखटा रहा है....' बोला दीपक।

'या खुदा! रसूल भैया ही होंगे—अब—तुम्हें यहाँ देखकर जाने क्या समझें?'

'पपिहा! दरवाजा खोल पपिहा?'

'हाय अल्ला!....' पपिहरा घबड़ा कर बोली—'उन्हीं को

आवाज है... रात में ही कैसे लौट आए रसूल भैया !....मैं क्या करूँ—क्या करूँ मैं ?'

'देखो, झोपड़ी में अँधेरा है....' दीपक ने कहा—'मैं दरवाजे के पास छिप जाता हूँ और तुम आगे बढ़कर दरवाजा खोलो। जैसे ही रसूल अन्दर आएगा, मैं धीरे से बाहर खिसक जाऊँगा....'

'ठीक है....' पपिहरा ने धड़कते दिल से दरवाजा खोला। रसूल अन्दर आया।

परन्तु दरवाजे की ओट में छिपे हुए दीपक ने ज्योंही बाहर खिसकना चाहा कि रसूल की तेज आँखों ने उसकी छाया देख ली और लपक कर मजबूत हाथों से उसकी कलाई पकड़ ली। दीपक छटपटाया परन्तु उस फौलादी शिकंजे से अपने को मुक्त न कर सका।

'पपिहा दिया जला !...'

रसूल की अतिशय गम्भीर आवाज सुनकर पपिहरा का दिल दहल उठा, पैर का पोर-पोर काँपने लगा...उसने धड़कते कलेजे और थरथराते हाथों से दीया जलाया। तेलहीन दीये की क्षीण ज्योति झोपड़ी के अन्धकार में हँस पड़ी।

रसूल ने अपने बन्दी को देखा, चौंक पड़ा—'तुम !'

'...' दीपक का सर नीचा था। चोर का हृदय काँप रहा था।

पपिहरा पत्थर बनी खड़ी थी।

'तुम इतनी रात को यहाँ क्या कर रहे थे दीपक भाई !....'

रसूल का स्वर कड़ा था और उसका पंजा दीपक की कलाई को कसकर पकड़े हुए था। दीपक अब भी चुप रहा।

'जवाब दो दीपक !...' चिल्लाया रसूल–'तुम शहर की गन्दगी गाँव में फैलाना चाहते हो ? यह समझ लो कि अब तक गाँव की आबोहवा साफ व पाक है। यहाँ सभी एक दूसरे के हमदर्द है—कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी वजह से मुझे सारे हिन्दुओं से नफरत हो जाय। गाँव में एक भी ऐसा हिन्दू नहीं, जो रसूल के दो-चार हाथ बरदाश्त कर सके। अगर मैं शैतानी पर अमादा हो जाऊँ तो गाँव

के सारे काफिरों का सफाया हो जाय...अच्छा है कि आज मैं अपने होश में हूं, नहीं तो रात के अय्याम में तुम्हें यहां देखकर तुम्हारा गला ही टीप देता....तुम जैसे शहरी जानवरों से तो हमारे गांव के कुत्ते बेहतर हैं....चुप क्यों हो, जवाब दो...'

दीपक क्या कहे, क्या न कहे ?

पपिहरा के होंठ खुले—'भैया ! ये हमसे मिलने आए थे...'

'भैया की बच्ची !....' तड़प कर बोला रसूल—'मिलने-जुलने के लिए दिन की रोशनी अच्छी होती है। रात का कालापन तो बरबादी का वायस है....'

रसूल ने दीपक का हाथ छोड़ दिया। बोला—'देखो। आस-पास दस कोस के अन्दर मेरे जैसा खौफनाक कोई नहीं। बेहतर है कि तुम इसी वक्त चले जाओ, वर्ना मेरा गुस्सा बुरा होता है ! मुझे अफसोस है कि तुम कैलाश भाई के दोस्त हो, वर्ना अपने घर में घुसे हुए लुटेरे को मैं छोड़ता नहीं, जाओ !....'

रसूल ने दीपक को दरवाजे से बाहर ढकेल दिया।

अन्दर से दरवाजा बन्द करके वह खटोले पर जा बैठा। क्रोध से उसकी आंखें लाल हो रही थीं। बदन का कालापन दीये की झिलमिलाहट में बड़ा ही भयानक लग रहा था।

पपिहरा खड़ी थी। बदन का खून पानी होता जा रहा था। सोच रही थी कि कहीं भयानक शेर पिछली रात की तरह उस पर टूट न पड़े। मगर खैरियत यही थी कि रसूल आज बोतल पर सवार नहीं था।

'पपिहा !'

'...' वह चुप रही।

तो रसूल ने उसकी कलाई पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया और उसके मुंह पर कई तमाचे जड़ दिए ! फिर गरजकर बोला—

'चुप क्यों है ? मुंह की जबान भी कटा दी क्या तूने ?....'

'भैया !....' रो पड़ी पपिहरा।

'दीपक यहाँ क्यों आया था ?...'

'मुझे माफ कर दो भैया !...'

'बेईमान कहीं की। सिर्फ माफी माँगे जाती है मगर मेरी बातों का कुछ भी जबाब नहीं देती'—बोला रसूल—'रसूल के काले मुंह पर और भी कालिख लगा देने का इरादा है क्या तेरा ? तू चाहती है कि गांव के लुच्चे मेरी ओर उंगली उठाकर मेरी आँखें फोड़ें...याद रख पपिहा ! जिस दिन गांववालों की जबान पर तेरी बदनामी आई, उसी दिन तेरा गला टीप दूँगा...मैं बुरा भले ही हूं, अपनी बदनामी की मुझे परवाह नहीं—मगर तेरी ओर किसी का इशारा मेरे लिए नाकाबिलेबरदाश्त होगा....'

'.......'

'यह लुका-छिपी का खेल तू कब से खेल रही है ?'

'अब बस करो भैया ?...'

'यह दीपक !' घृणा-युक्त स्वर में बोला रसूल—'सुना करता था कि गांव की झोपड़ियों में सांप रहा करते हैं मगर मालूम हुआ कि शहर के सांप भी मौत के परवाने होते हैं। अच्छा हो कि तू अभी से सँभाल ले अपने को और शहर की बदबू अपने बदन से न लगा। गांव में कितने ही खुशबूदार फूल हैं, जिन्हें पाकर तेरा दिलो-दिमाग मुअत्तर हो जायगा...मैं जानता हूं कि तू अब बड़ी हो गई है मगर जवानी के माने यह नहीं कि टूटे घड़े के पानी की तरह तू अपनी सारी इज्जतोअस्मत धूल में मिला दे...अच्छा हुआ कि मैं आज रातो-रात चला आया, वर्ना खुदा जाने क्या कहर टूटता ? मैं कल जमीदार के घर जाऊंगा और उनसे कहूंगा कि वे उस शहरी सांप को जल्द से जल्द शहर को वापिस भेज दें...'

'ऐसा न कहो भैया !...वे खुद चले जायँगे....तुम उनकी तौहीन न करो उनके दोस्त के सामने...'

'तू चुप रह....कल की छोकरी चली है मुझे सिखाने....उसकी तौहीन का इस कमबख्त को इतना ख्याल है मगर मेरी इज्जत इसके

लिए जैसे जमीन की धूल बन गई है...'

रसूल उठकर बाहर चबूतरे पर जा लेटा। पपिहरा खटोले पर बैठकर दुसह: चिन्ताओं में निमग्न हो गई।

आज क्या से क्या हो गया? बचपन की बुलबुल जवानी की गुलेल की एक ही चोट खाकर कितनी जल्दी उड़ गई है कि वह जान ही न सकी। दीपक का इसमें क्या अपराध है और पपिहरा की भी क्या गलती?

× × ×

ग्लानि से भरा दीपक जब रात के सन्नाटे में पपिहरा के घर से निकाल दिया गया तो उसे बड़ी व्यथा हुई।

धीरे-धीरे लड़खड़ाते पैरों से वह चला जा रहा था। उसका मस्तिष्क ठिकाने नहीं था।

दीपक सम्पन्न परिवार का लड़का है। बचपन में उसे कोई अभाव नहीं था—और जवानी में जो कुछ अभाव उसे खल रहा था, उसने गांव में आकर उसे दूर कर लिया।

परन्तु यह लांछन उसके लिये असह्य था। वह कैलाश को क्या मुंह दिखायेगा? वह तो उससे घूमने का बहाना करके घर से निकला था। अब इतनी रात बीते जब कैलाश की हवेली पर पहुँचेगा तो उसके प्रश्नों का क्या जवाब देगा?

सोचता-सोचता पागल-सा हो रहा था दीपक।

हवेली के सामने अपने को पाकर वह चौंक पड़ा।

कांपते पैरों से अन्दर घुसा और चुपचाप कैलाश के कमरे में आकर कपड़े उतारने लगा।

'कौन है?'—कैलाश की सजग आवाज ने पूछा।

सुनकर दीपक नवसिखुये चोर की तरह भयभीत हो उठा और कांपते स्वर में बोला, धीरे से —'मैं हूं...।'

'तुम तो हो ही...मैं सोया नहीं, जग रहा हूं मगर...' कैलाश उठकर दीपक के पास आ रहा—'मगर तुम इतनी रात तक कहां थे

दीपक ? तुम्हारी खोज में लठैतों को चार बार भेज चुका हूँ फिर भ गाँव में तुम्हारा पता न लगा। तुम तो अब रात में निशाचरों की तरह भ्रमण करने और गायब भी होने लगे हो। शहर में इतनी रात तक घूमते तो पुलिस तुम्हें अवारागर्दी में गिरफ्तार कर लेती—गाँव में पुलिस नहीं है तो क्या यह समझते हो कि यहाँ कोई नियम-कानून है ही नहीं ?....' कहकर कैलाश हँसा।

दीपक के चेहरे पर पतझड़ उठ खड़ा हुआ था। मजाक में कहे हुए ये वाक्य उसका कलेजा बेधे जा रहे थे।

बोला—'ऊँचे उठने का अभिलाषी था कैलाश ?...मगर आज मालूम हुआ कि पतन का विस्तार उन्नति की सीमा से बहुत अधिक है...'

'तो तुम हौली से पीकर आ रहे हो ?....'

'मेरे दोस्त ! हौली रात गये किसी के इन्तजार में खुली नहीं रहती। मुझे बगैर पीये ही नशा हो आया है। मैं आज नीचे गिरा हूँ। आसमान पर तारा बनकर चमकने की चाह थी मगर आज जमीन की धूल बनकर नीचे पड़ा हूँ।'

'तुम कहाँ थे अब तक दीपक !'—कैलाश को दीपक की भाव-भंगी से शंका हो आई थी।

'पपिहरा के यहाँ ?' दीपक ने स्पष्ट कह दिया।

'क्या कर रहे थे अब तक ?'

'उसके साथ सोया था...' दीपक बोला।

सुनकर कैलाश की आँखें खिड़की की तरह खुल गयीं, आश्चर्य से ! उसका हाथ पकड़ कर कहा उसने—'तुमने नादानी कर डाली दीपक ! रसूल देख लेता तो क्या करता, जानते हो ?"

'उसने हमें देख लिया कैलाश !'

'देख लिया ?....और उसने चुपचाप तुम्हें यहाँ चले आने दिया ?'

'वह आज नशे में नहीं था....' बोला दीपक।

'खैरियत समझो'...कैलाश ने कहा—'मगर तुमने यह अच्छा काम नहीं किया दीपक ! तुम ऐसे कभी नहीं थे। गाँव की हवा स्वास्थ्यकर होती है परन्तु वह तुम्हारे लिये जहर साबित हुई...पपिहरा को भी अपने साथ गिराया तुमने....'

'वह खुद गिरी कैलाश, और मुझे भी उसने गिराया। तुम्हीं बताओ, सौन्दर्य की चोट कोई कब तक बर्दाश्त कर सकता है? आँखों के चुम्बक से लोहे का कलेजा भी खिंच ही आयेगा। इसमें मेरा अपराध नहीं मित्र ! सारा दोष पपिहरा का है !'

'दीपक !'—कुछ रूखे स्वर में कहा कैलाश ने—'पपिहरा अभी नादान है। वह रोगी हो सकती है, परन्तु रोग की दवा वह नहीं जानती। तुम डाक्टरी पढ़ रहे हो, दवा देना तुम्हीं जानते हो। परन्तु तुमने उसे दवा के बदले जहर दे दिया दीपक ! तुम सफल डाक्टर नहीं बन सकते....'

'मुझे माफ कर दो भाई कैलाश !....'

'माफी तुम सवेरे जाकर पपिहरा और रसूल से माँगना। रसूल चाहे कितना ही शैतान हो परन्तु हमारे खानदान के साथ उसका निकट सम्पर्क रहा है। मैं यह नहीं चाहता कि उसके हृदय में कभी भी विक्षोभ की सृष्टि हो....तुम इस समय सो जाओ। सुबह मैं रसूल को बुलवाऊँगा....'

और सुबह ही रसूल हवेली के दरवाजे पर बिना बुलाये आ खड़ा हुआ।

दीपक और कैलाश उस समय हलुआ और दही के शरबत का नाश्ता कर रहे थे। दीपक एकदम खामोश था, जैसे दो बजे रात को आल इण्डिया रेडियो।

लठैत ने आकर रसूल के आने की सूचना दी। सुनकर दीपक का रग-रग काँप उठा। वह सँभल कर बैठ गया।

रसूल आया। उसने कैलाश को बन्दगी की और दीपक की ओर तीव्र दृष्टि से देखता खड़ा रहा।

'कैसे आये रसूल भाई !'—पूछा कैलाश ने ।

रसूल का काला भयानक बदन एक बार हिला, आँखें ज्वाला की तरह चमकी, फिर धीरे से बोला वह—'मैं यह कहने आया हूँ छोटे भैया कि आजकल गाँव में साँप पैदा हो रहे हैं और गाँव तुम्हारा है। हम तुम्हारी रियाया हैं, हमारी हिफाजत तुम्हारे जिम्मे है....'

'अपनी जिम्मेदारी में जानता हूँ मगर साँप कहाँ नहीं होते रसूल भाई...'

'साँप सभी जगह होते हैं छोटे भैया ! मगर साँपों का पालना अक्लमन्दी नहीं। मुझे यह कहते हुए अफसोस है कि तुम आजकल साँप पाल रहे हो। तुम रियाया की हिफाजत के बदले उसकी मौत का सामान इकट्ठा कर रहे हो। साँप को हलुआ-दही का शरबत तुम खिला-पिला रहे हो छोटे भैया !...'

'मैं सब जानता हूँ रसूल !....' बोला कैलाश—'मगर अपने जानवरों का पालन-पोषण तो करना ही पड़ेगा मुझे....'

'तुम सब जानवर पाल सकते हो, मगर मैं तुम्हें साँप नहीं, पालने दूँगा छोटे भैया !....' रसूल तेज स्वर में बोला—'तुम जानते हो कि मैं इस वक्त अपने होश में हूँ मगर बेहोश होते ही मैं तुम्हारे साँप का सर तोड़ दूँगा। मेरी ताकत तुम जानते हो छोटे सरकार !....'

'जानता हूँ मैं...' कैलाश बोला—'मगर यह याद रखो रसूल कि दीपक मेरा मित्र है और मेरी बन्दूक के आगे तुम्हारे ये मजबूत हाथ-पैर छटपटा कर ठण्डे पड़ जाएँगे....'

'मुझे माफ करो छोटे भैया ! मैं तुमसे लड़ने नहीं आया....मैं तुम्हारे और ठाकुर दादा के सामने भेंड़ का बच्चा बन जाता हूँ और भेड़ के बच्चे के लिए बन्दूक को क्या जरूरत ?' रसूल बोला–'मगर जरा अपने इस लायक दोस्त से पूछो कि आज रात के अंधेरे में इन्होंने क्या गुंल खिलाया है ?'

'मैं सब सुन चुका हूँ रसूल भाई !....' बोला कैलाश—'केवल

मुझे ही नहीं, खुद इनको भी दुख है। मगर इसमें पपिहरा की रजामंदी थी....'

'ठीक है भैया! गुलाब की कली को तोड़कर सूँघनेवाले कह देते हैं कि वह हवा के झोंके से झूमकर हमें अपने पास बुला रही थी... मगर खुदा जानता है कि पपिहा मुझ जैसे हैवान के साथ रहकर भी अब तक कितनी मासूम है ...शिकारी की बाँसुरी पर झूमता हुआ मिरगा बेहोश हो सकता है मगर जाल में फँसने वह नहीं आता... तुम्हारा दोस्त इतना बड़ा शिकारी है, मैं यह नहीं जानता था....नहीं तो पहले ही होशियार हो जाता....'

'मुहब्बत की कद्र करनी चाहिए तुम्हें रसूल भाई! दोनों में काफी दिनों से मुहब्बत है!....' बोला कैलाश।

'मुहब्बत की मैं दाद देता हूँ छोटे भैया! मगर मुहब्बत इन्सान को अन्धा बना देती है, यह मैं नहीं जानता था।' रसूल ने कहा— 'फिर मुहब्बत ऐसी चीज नहीं जिसे रास्ते भर लुटाते चलें। इन दोनों में मुहब्बत थी मगर खुद फैसला करने का इन्हें क्या अख्तियार था। फैसला कोई तीसरा आदमी करे, तभी अच्छा होता है छोटे भैया! मैं मर नहीं गया था, तुम भी मौजूद थे—तो फिर हमें इसकी खबर क्यों नहीं दी गई?...'

'जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ रसूल भाई!....' कहा कैलाश ने—'अब तो तुम सब जान-सुन चुके हो। अबसे अच्छा है कि...'

'छोटे भैया!—यह न भूलो कि हमें इसी दुनियाँ में रहना है और इस दुनियाँ के कायदे-कानून में, मुहब्बत के लिए कोई दर्जा नहीं....मैं नहीं चाहता कि मेरे डर से काँपनेवाले इंसान कल मेरे सामने सीना तानकर खड़े हों और कहें कि मैं अपनी बहन को....मेरी जबान न खुलवाओ छोटे भैया। मजबूर होकर जबरियन कोई काम करने का आदी मैं नहीं...'

चलने लगा रसूल। उसके पैर दरवाजे की ओर बढ़े।

कैलाश ने पुकारा—'सुनो तो रसूल भाई!...'

रसूल जरा-सा घूमकर बोला—'बहुत सुन चुका छोटे भैया। बेहतर होगा कि अपने पालतु साँप को शहर भेज दो जल्द से जल्द और यह समझ लो कि तुम्हारी बन्दूक दिन के उजाले में ही शिकार कर सकती है, रात के अँधेरे में निशाना चूके बिना नहीं रहेगा....मगर मेरे हाथ काली रात में भी अपने शिकार का गला खोज लेंगे....'

तेजी से रसूल कमरे से बाहर निकल गया।

बड़ी देर के बाद बोला कैलाश—'बड़ा खतरनाक आदमी है यह रसूल। जिस काम का इरादा कर लेता है, उसे पूरा करके ही छोड़ता है। तुम्हारा अब यहाँ रहना ठीक नहीं दीपक। अच्छा हो कि तुम कब सुबह चले जाओ—और आज दिन भर तुम हवेली में ही रहो, कहीं जाओ-आओ मत....'

'मुझे बड़ा दुख है कैलाश कि मेरे कारण तुम्हें परेशानी उठानी पड़ी... और बेचारी पपिहरा तो जाने क्या भुगत रही होगी। क्या मुझे माफी नहीं मिल सकती?'

'कौन माफ नहीं करेगा तुम्हें!'

'रसूल!' दीपक ने कहा।

'जिसके पास अशिक्षा और ताकत होती है, वह माफ नहीं करता दीपक! वह बदला लेता है—और रसूल का बदला अनुमान से कहीं अधिक भयानक होगा। तुम क्षमा पाने की आशा छोड़ो और यहाँ से चले जाओ....पपिहरा को भूल जाओ...'

'अच्छा!'

उस दिन दीपक ने कुछ खाया नहीं। ग्लानि से पेट इतना भर चुका था कि अन्न के लिए तनिक भी स्थान नहीं था। कैलाश ने बहुत जोर दिया था मगर मित्र का हठ हृदय की पीड़ा के आगे हार मानकर रह गया।

पपिहरा! वह भी दीपक के लिये चिन्तित थी। कहीं रसूल के कारण दीपक को कुछ हो गया तो कैसे धैर्य रख सकेगी।

रसूल हवेली से लौटा तो पपिहरा ने देखा कि उसका चेहरा

तमतमाया हुआ है। वह दौड़कर रसूल के पास आई। पुकारा—'रसूल भैया !...'

'क्या है ?' उसका स्वर अतिशय गम्भीर था।

'तुम क्या कर आये हो भैया, मुझसे साफ-साफ कहो...'

'कुछ नहीं ?'

'मगर तुम्हारा चेहरा लाल है...' बोली पपिहरा—'तुम्हारी आँखों में खून भरा है ...' पपिहरा ने रसूल के पैर पकड़ लिए—'मुझे बताओ मेरे भैया, तुमने क्या गजब किया ?'

'छोड़ मेरा पैर !...' रसूल ने अपना पैर तेजी से खींच लिया, पपिहरा नाक के बल जमीन पर आ गिरी—'इन हाथों से मेरा जिस्म मत छू। तेरे बदन का एक-एक जर्रा नापाक हो चुका है। शैतान जवान होकर हैवान बन गई। तेरी सारी मासूमियत कहाँ चली गई, बोल !...'

'मुझे माफ कर दो भैया !...रसूल भैया मुझे माफ कर दो ..न माफ कर सको तो मेरा गला घोंट दो, मेरी जान ले लो, मुझे मार डालो, मगर उन पर कोई आफत न ढालो भैया...

'तेरी जान लेकर क्या करूँगा मैं ?' बोला रसूल घृणापूर्वक—'तेरे जिस्म को मैंने अपने खून से सींचा है—और कोई भी इन्सान अपने लगाये हुए पौधे को खुद बरबाद नहीं करता....'

'मगर वे...उनका क्या होगा भैया ?'

'मैं उसे माफ नहीं कर सकता छोकरी ! उसका ख्याल तू निकाल फेंक अपने दिल से। मैं जा रहा हूँ। रात को पीकर आऊँगा। तू वसीदा दादी के घर में सो रहना—मेरे सामने आई नहीं कि तेरी शामत ही आ जायगी...'

'कुछ खाना बना दूँ, खालो भैया ! तब जहाँ जाना हो जाओ....' पपिहरा ने कहा।

'तू मुझे खाना खिलायेगी ? तेरे हाथ का जहर कौन खाना चाहेगा ? मुहब्बत के पीछे इन्सान खूनी भी बन सकता है। कौन

जाने तू किसी दिन मेरी जान लेने पर अमादा हो जाय...'

कहकर रसूल ने अपना बरछा लगा बड़ा-सा लट्ठ उठाया और धीरे-धीरे दरवाजे से बाहर गया।

दोपहर का वक्त आ रहा था। सूरज की किरणें सोने की चमक के बजाय आग की लपटों का रूप धारण कर रही थीं। पपिहरा बैठी थी खटोले पर, तभी बूढ़ी वसीदा ने वहाँ प्रवेश किया, झुकी कमर को हाथ की लकड़ी का सहारा देते हुए।

'अरी बन्नो! किधर है तू?....' बोली बुढ़िया—'मुई आँखों से दिखाई ही नहीं देता या तेरे झोपड़े में रात हो आई है।'

'मैं इधर हूँ दादी! आ जाओ खटोले पर...'

बुढ़िया हाँफती हुई खटोले पर आ बैठी। हाथ की लकड़ी उसने जमीन पर रख दी, फिर पपिहरा के बदन पर हाथ फेरती हुई बोली—'क्यों री बन्नो! आज एकदम गुड़िया-सी क्यों हो रही है? बोलती भी क्यों नहीं कुछ...'

'क्या बोलूँ दादी?'

'ऐ है! जबान में ताला लगा दिया क्या किसी ने?'—बुढ़िया खाँसकर बोली—'देख बन्नो! तेरी उमर अब जवानी का दामन चूम रही है। ऐसे वक्त जरा पैर कमजोर पड़ जाते हैं, फिसलने का डर कदम-कदम पर रहता है और एक दफा पैर फिसले नहीं कि जिन्दगी भर के लिये कीचड़ लग जायगी...'

'तुम क्या यही कहने आई थी दादी।'

'लो, यह मुँहजली तो आजकल पूरी बिल्ली हो रही है। लोगों की आवाज सुनकर काट खाने को दौड़ती है...हाँ! यह तो बता, आज सुबह से ही रसूल इतना गरम क्यों हो रहा है? तुझे अभी डाँट क्यों रहा था...'

'तुम तो दादी खामखाह पैर की बेड़ी बन जाती हो....'

'हाँ रे हाँ! अब तो तुझे हाथ का कंगन चाहिये, पैर की बेड़ी तो बूढ़ी हो चली....मगर मेरी बातों का जवाब क्यों नहीं देती...'

'यह ऐसे जवाब नहीं देगी दादी। इसके मुंह पर खलील के तमाचे लगें तो कम्बख्त अभी पिपिहिरी की तरह बजने लगे...' दरवाजे पर से किसी ने कहा।

'अरे खलील तू भी आ गया'...बुढ़िया बोली—'आ बेटा, आ! तेरी बड़ी उमर हो। अभी-अभी तेरी ही बात कर रही थी पपिहरा से....'

'इस पपिहरा से तुम मेरी बात कर रही थी दादी!'—खलील अन्दर आकर बोला—'पैर तो तुम्हारे कब्र में लटक गये मगर झूठ बोलने की आदत तुम्हारी खुदा के फजल से अभी तक बरकरार है....खुश रहो दादी, खुश रहो....'

'अरे चल-चल! बड़ा आया है दुआ देने वाला! खुदा बचाये आजकल के छोकरे-छोकरियों से—बुजुर्गों की नाक काटते हैं, इस तरह कि पता तक न चले...'

'तुम्हारी नाक भी तो बड़ी अजीब है दादी!—' बोला खलील—'इतना अच्छा बाजा बजाती है कि अल्लाह के फजल से अगर कोई रात को तुम्हारे कमरे में आ जाय तो शेर की गुर्राहट समझ कर एक...दो....तीन....'

'और तेरी नाक क्या नहीं बाजा बजाती....देख पपिहरा! अपने साथी को देख तो....'

'यह पिपिहरी क्या देखेगी दादी! यह तो अन्धी हो गयी है आजकल...' बोला खलील।

'अन्धी ?....बुढ़िया चौंककर बोली—'तभी तो रसूल आज इस पर बिगड़ रहा था....क्यों री लड़की, आंखों की रोशनी कहाँ खो बैठी ?'

'इससे मत बोलो दादी! यह गूंगी भी हो गई है....'

'खलील!'...पपिहरा बोली—'मुझसे मजाक मत किया करो!'

'आज तुझसे मजाक करने की इस नाचीज में हिम्मत कहाँ...'

'तो तुम चुप रहो—मेरी तबीयत दुरुस्त नहीं....'

'तबीयत खराब हो तुम्हारे दुश्मनों की'... कहा खलील ने—'मगर नबाब की बेटी साहिबा ! खुदा ने जबान दी है चलाने के लिए ही तो—फिर चुप रहने की मनहूसियत मैं बरदाश्त नहीं कर सकता, लड़कपन में तो कैंची की तरह जबान चलती थी इसकी और आज बोलती बन्द ! या खुदा ! पिपिहिरी की आवाज में बल दे—'

'तेरा सर दे !'...बुढ़िया बिगड़ कर बोली—'तू क्या कम शैतान है ! बोलने लगता है तो जबान रेलगाड़ी के पहियों की तरह धड़-धड़ चलती ही जाती है....देख आज पपिहा बन्नो की तबीयत नासाज है। ले जा इसे तालाब के किनारे बेटा ! इसका दिल बहला ला...'

'अच्छा दादी ! तुम्हारा हुक्म कबूल...चल रे पिपिहिरी ! देख सीधे से उठकर चल नहीं तो कान पकड़ कर...'

खलील ने पपिहरा का हाथ पकड़कर उठाना चाहा तो उसने हाथ झटक दिया और बिगड़ कर बोली—'देख खलील ! मुझसे शैतानी की तो अच्छा न होगा। कहे देती हूं....'

'कहती चल'—बोला खलील—'मैं तेरे साथ शैतानी कौन-सी कर रहा हूं। क्या तू यह चाहती है कि बचपन की याद एकदम भूल जाऊं मैं ? तेरी जैसी बेदिमाग मैंने खुदा की मेहरबानी से कहीं देखा नहीं....'

'अब देख ले और पीछा छोड़ दे—मैं इस वक्त परेशान हूं। तेरी बातें मेरा दिल बहलाने के बजाय तीर-सी चुभी जा रही हैं....'

'तो यह कह कि बुलबुल के सीने में सैय्याद का तीर लग चुका है, तभी तो पर फटफटा रहे हैं...खुश रहो बुलबुल...चल, तालाब पर तो....'

'अरे खलील के बच्चे !' बुढ़िया वसीदा ने पुकारा।

'कहो दादा की दादी !....' खलील बोला—'बुखार चढ़ आया है क्या ?'

'बुखार चढ़े तेरी नानी को खलील के पिल्ले ?... देख ! इस टिटिहरी-पिपिहरी को चावल के बोरे की तरह पीठ पर लाद ले और तालाब के पानी में पटक आ...'

'तुम भी क्या कहोगी कि किसी भूत को हुक्म दिया था.... जूड़ी-बुखार की कसम दादी, अपने बड़ों की हुक्म-उदूली तो माबदौलत जानते ही नहीं ! आ टिटिहरी ! चढ़ मेरी पीठ पर....'

खलील ने झुककर पपिहरा को उठा लिया और पीठ पर लाद खड़ा हो गया।

'देखा न दादी !....' बोला खलील—'बुखार कसम, यह तुम्हारी टिटिहरी भी नाजोअदा से लबरेज है....क्या ठाठ से घुड़सवार बन गई, जरा-भी बोली तक नहीं।'

'ले जा इसे—मैं भी चलूं अपनी झोपड़ी में....' बुढ़िया उठ खड़ी हुई और बाहर आई।

खलील पपिहरा को तालाब की सीढ़ी पर सावधानी से पटक दिया ! बोला—'रास्ते भर गूंगी बनी रही मगर अब तो तुझे बोलना ही पड़ेगा....खोल अपनी जबान, बोल....'

पपिहरा चुप रही।

'अरे !....' खलील चौंक पड़ा। पपिहरा के गालों पर से बहते हुए आंसू देखकर उसकी सारी हंसी हवा हो गई।

धीरे से नम्र गम्भीर स्वर में बोला—'तू रो रही है पपिहरा !' खुदा कसम ! मैं तेरे आंसू नहीं देख सकता, इन्हें बन्द कर जल्दी... सुन रही है तु....'

अपनत्व का सम्पर्क पाकर पपिहरा और फूट पड़ी। हृदय की करुणा पानी होकर आंखों की राह बह चली। गला अवरुद्ध हो गया, सांस तेजी से चलने लगी।

खलील ने प्यार से उसे अपने पास खींच लिया। बोला—'तुझे क्या तकलीफ है पपिहरा ! तेरी आंखों में आंसू मैंने कभी नहीं देखे—आज पहली दफा तुझे रोते देख कर मैं घबड़ा गया हूं। मुझे अपना

हमदर्द समझ पपिहरा !'

'खलील !...' पपिहरा बोली—'मैं तो लुट गई ?...'

'लुट गई ?....' खलील आश्चर्य से बोला—'कैसे लुट गई, कहाँ लुट गई ? बोल, किसने तुझे लूटा—मैं उस दगाबाज की गर्दन तोड़ दूंगा....'

'तुम उसकी गर्दन नहीं तोड़ सकते खलील !'

'क्यों ? क्या तू मुझे कमजोर समझती है—याद रख, मैं रसूल भैया का शागिर्द हूँ....'

'यह बात नहीं खलील !...' पपिहरा ने कहा—'उसकी गर्दन तोड़ने से मेरा कलेजा टूट जायगा....'

'यह बात है....' और भी गम्भीर होकर बोला खलील—'तो तेरे दिल की डोर इतनी दूर तक जा पहुँची है ? मगर वह कौन है पपिहरा ! मुझे उसका नाम बता और जो कुछ हुआ है साफ-साफ कह...'

'मैं बहुत दूर तक बढ़ गई हूँ बरबादी के रास्ते पर खलील ? अब लौट सकना मुश्किल है मेरे लिए। एक तुम्हारा ही सहारा है मुझे...'

'अरी नादान ! इस सहारे को तू छोटा मत समझ और इधर-उधर की बातें न बना कर सारी वारदात मुझे बता...'

रो-रोकर सिसिकियाँ लेकर पपिहरा ने अपने बचपन के साथी को सारी बातें बता दीं। खलील ज्यों-ज्यों सुनता गया त्यों-त्यों उसकी मुखाकृति गम्भीर होती गई।

सब सुनकर वह बोला—'तूने अच्छा नहीं किया पपिहा ! मेरा दिल कहता है कि तू जरूर तकलीफ उठायेगी। साँप पर पैर पड़ जाय तो उसके काटने का उतना डर नहीं रहता, जितना उसके आस्तीन में घुस जाने का....खैर ! खुदा की मरजी ! अब तू क्या चाहती है मुझसे ?'

'मैं परेशान हूँ खलील ! वे कैसे होंगे, क्या तुम हवेली तक जाकर पता लगाओगे ?'

'क्यों नहीं—मैं उससे मिलूँगा भी—देखूँ तो जरा कि वह हीरा कैसा है, जिसकी चमक पपिहरा की आँखों में तैर रही है। क्या तू उससे मिलना भी चाहती है ?....'

'नहीं, नहीं, रसूल भैया उनकी जान के प्यासे बन गये हैं। उनकी खैरियत जाहिर हो जाय, यही मेरे लिए बहुत है।'

'पपिहरा !....' खलील ने कहा—'तू एक ही दिन में मुहब्बत के तमाचे खाकर लैली बन गई। मुझे हैरत है कि तेरी वह सारी शोखी, दिलफरेब अदायें इतनी जल्दो कैसे काफूर हो गईं। मैं अभी हवेली की तरफ जाता हूं। तू यहाँ से घर चल। मैं सीधे वहीं आ जाऊँगा....'

खलील बढ़ चला हवेली की ओर।

हवेली के अन्दर सामने ही कैलाश खड़ा था। खलील को देखकर बोला—'यहाँ कैसे आया रे खलील ?....'

'ओहो, छोटे भैया तुम ! जहेकिस्मत कि तुम दिखाई पड़े।'

'क्यों क्या कोई काम है ?'

'अजी, तारीफ तो यह है कि माबदौलत बगैर किसी काम के ही लोगों को खोजते फिरते हैं—यह तो बताओ छोटे भैया की दीवट साहब कहाँ हैं ?...'

'दीपक को पूछ रहे हो ?'

'हाँ-हाँ ! नाम भूल गया था छोटे भैया ! और तुम लोगों का नाम तो ऐसा रहता है कि खुदा कसम पुकारते ही नहीं बनता....'

कैलास हँसने लगा। बोला—'तू भी तो पपिहरा का साथी है। तुम दोनों ही बड़े बातूनी हो। शायद उसी का कोई सन्देशा लेकर दीपक के पास आये हो ?'

'खुदा के फजल से तुम्हें तो वकील बनना चाहिये था छोटे भैया ! ऐसा सवाल पूछते हो कि जबाब देते ही बनता है....अच्छा, मुझे देर हो जाएगी। दीपक साहब कहाँ तशरीफ फरमाते हैं, जरा जल्दी बोलो छोटे भैया।

'उस कमरे में चले जाओ....'

खलील उधर बढ़ चला। दीपक बैठा हुआ हथेली पर गाल का बोझ दिये कुछ सोच रहा था।

'खुदा कसम! तुम तो बिलकुल ही गुमसुम बैठे हो दीपक भाई!'

दीपक ने सर उठाया। देखा, १७-१८ का नौजवान छोकरा, हसीन, हँसमुख, हाथ पैर से मजबूत।

'कौन हो तुम?...' दीपक ने पूछा।

'अजी साहब! इतना नजदीकी रिश्ता जोड़ बैठे हो, फिर भी खलील मियां को पहचानते नहीं! अल्लाह की मिहरबानी ने बड़े ही बेवफा हो तुम....'

खलील अन्दर आ गया और बैठता हुआ बोला—'कहो भाई, अच्छे तो हो या किसी की याद सता रही है?...'

'अच्छा ही हूं...' दीपक ने कहा! वह खलील को पहचानता नहीं था, फिर भी उसकी बातों से प्रभावित हुए बिना न रहा।

'बड़ी ख्वाहिश थी दिल में पपिहरा के पपीहे को देखने की सो देख लिया....' बोला खलील—'तुम तो बड़े हसीन हो जी! खुदा के लिए कभी मुझ पर भी निगाह डाल दिया करो। वल्लाह! मैं अपने को बताना ही भूल गया था—मैं हूं खलील मियाँ, पपिहरा के बचपने से लेकर अब तक का दोस्त—हम उम्र, हमदर्द, हमजोली-हम....'

'बस-बस, मैं समझ गया, आगे कहो....' मुस्कराया दीपक।

'यार? कसम खुदा की, हँसते तो ऐसा हो कि फूल तो क्या तारे झड़ने लगते हैं तुम्हारे मुंह से। खैर! कुछ जरूरी बातें कर लूं... अभी मुझे लौट जाना है ...पपिहा की खबर लेकर तुम्हारे पास आया हूं। वह तुम्हारे बगैर बड़ी बेचैन है...'

'बेचैनी तो यहाँ भी कम नहीं है खलील!...'

'तुम्हें कुछ कहना है उससे....'

'हाँ, कह देना कि मैं कल यहाँ से जा रहा हूं। पढ़ाई खत्म होते ही साल भर बाद मैं यहाँ आऊंगा और उसे ले चलूंगा। कोई ताकत मुझे रोक नहीं सकती....तब तक वह मेरा इन्तजार करे....'

'कह दूँगा...तुम्हारे साथ यह खलील भी है, जरा ख्याल रखना जानेमन ! शहर की गलियों को सूँघ कर कहीं गाँव के फूलों को भूल मत जाना... तो चलता हूँ अब....'

• •

अब शाम होने को आई। बड़ी थकावट आ गई है दिमाग में। बदन का एक-एक हिस्सा दर्द से भर गया है। हाथ की उँगलियाँ कलम पकड़े-पकड़े सड़े घाव की तरह पीड़ा दे रही हैं। चारपाई पर लम्बा-लम्बा लेट जाता हूँ मैं। आँखें बन्द कर लेता हूँ। आँखें खुली थीं तो शाम का धुँधलका देख रही थीं। मगर बन्द होते ही विगत जीवन की घटनायें देखने लगीं।

कुछ ही साल पहले की बात है। पिताजी मरे थे तो काफी धन छोड़ गये थे। पड़े-पड़े सोना, बैठे-बैठे लिखना और खाना, बस यही काम था मेरे लिये। उसी समय की बात है, चटपटी—

× × ×

अभी पाँच बजे हैं। मैं चारपाई पर पड़ा हूँ। रुई की रजाई बदन से लिपट-लिपट कर प्रेयसी का मादक शरीर बन गयी है। मेरे सर और पैर ठिठुर कर इकट्ठे हो गये हैं।

नींद अभी पूरी नहीं खुली है।

रजाई हटाकर जरा-सा मुँह खोलता हूँ तो बाहर का सारा जाड़ा भीतर घुस आना चाहता है। मैं पुनः मुँह ढँक लेता हूँ।

पड़ोस के धोबी का जवान गदहा इतने जोर से चीपों-चीपों करने लगा है कि रजाई से बँधे हुए कान तक फटे जा रहे हैं। इन कमबख्तों को भी रात भर नींद नहीं आती क्या ?

अभी पौने दस महीने हुए हैं मेरी शादी के। पढ़ी-लिखी खूबसूरत हैं अपनी वे—बातचीत तो इस अदा के साथ करती हैं कि सरेआम मुँह चूम लेने को जी चाहता है। हम जैसे तबीयतदार आदमी को चीज एक ही मिली है कि पूछिये मत।

सुहागरात की एक घटना सुना दूँ आपको। जब मैं शयन-गृह में पहुँचा तो वे मुँह खोले कुर्सी पर कोई पत्रिका पढ़ रही थीं। मुझे देख कर उठ खड़ी हुईं और निर्भीक भाव से मुस्करा कर नमस्ते किया।

मैं समझ गया कि 'झिझक' उनमें नहीं है। अतः हँसकर बोला—'भाई। सुना है यहाँ कहीं चांद उतरा है?...'

तुरन्त ही जवाब दिया उन्होंने—'जी हाँ, आइना लाऊँ क्या?'

'चांद को तो मैं अपने सामने ही देख रखा हूँ—' मैंने कहा।

'जी नहीं! आप चांद की किरण को देख रहे हैं – पहले ही दिन धोखा मत खाइये।'

और जीवनारम्भ के उस पहले दिन ही मैं उनसे 'मात' हो गया। आज भी 'मात' ही हूँ। मेरी नकेल उनके हाथों में है।

लीजिये, मुझे देर तक सोते देख कर वे जगाने आ रही हैं।

'उठो भी....' वे मुझे झकझोर रही हैं परन्तु मैं मुरदे की तरह अचल पड़ा हूँ।

'ठहरो मैं पानी लाती हूँ....' कहकर वे जाने लगती हैं तो मैं एकदम घबड़ा कर उठ बैठता हूँ। कहता हूँ—'अरे भाई! सुनो तो—मुझे प्यास नहीं लगी है। पानी रहने दो।'

वे घूमकर मुस्करा उठी हैं और मेरी चारपाई के बिलकुल पास आ खड़ी होती हैं। मैं लपककर उनका हाथ पकड़ लेता हूँ। वे जान-बूझकर अपने को नहीं सँभालती और मेरी गोद में इस तरह से गिर पड़ती हैं कि क्या कहूँ, दीवारों तक का सीना धड़कने लगता है चुम्बन की मादक ध्वनियाँ सुनकर।

'अब तो नाश्ता हो चुका न, छोड़ो मुझे....' वे छिटककर दूर जा पड़ती हैं और पूरब ओर की खिड़की खोल देती हैं। सूरज की सुनहली किरण मेरे ऊपर आकर लोटने लगती है।

यह खुला हुआ दरवाजा सड़क के बिल्कुल किनारे है। सड़क पर एक-दो आदमी आ-जा रहे हैं। मैं चारपाई पर बैठा हुआ सब देख रहा हूँ।

● ●

गाँव की होली—शराबखाना ? टूटे-फूटे घर में पीनेवाले देहातियों का अजीब जमघट, हो-हल्ला, चिल्ल-पों, तू-तू, मैं-मैं, गाली-गलौज ! खून बहाकर पैदा किए गए पैसों की फेंका-फेंकी। धन का इतना दुरुपयोग-अपमान। फिर भी मजदूर चिल्लाते हैं कि हम गरीब हैं, हमें लूटा जा रहा है। खुद लुटानेवालों को लोग लूटें न तो क्या करें।

टिन के पीपों में शराब भरी पड़ी है। देशी शराब, कि एक घूँट पीते ही कलेजे की नस-नस नशीली हो उठे। मिट्टी के कुल्हड़ भरे जा रहे हैं। छल-छल की आवाज भी हो रही है। ताँबे के पैसे भी ठनक रहे हैं। कलार साहब की कलवरिया गुलजार है शराब से, शराबियों से और पैसों से।

'अबे ओ जुम्मन के भतीजे ! इधर आ, इधर...'

'ओ हो रसूल राजा तुम ?...' खुदा कसम, खूब पीते हो अँधेरे कोने में बैठकर....जियो सरकार जियो !....देखो, उस्मान चचा भी आज आसमान से टपक पड़े हैं...'

'क्या खूब !...' नशे में बुत रसूल ठठाकर हँसने लगा है।

'खूब रसूल भैया। खूब निपटेगी, जब मिल बैठेंगे दीवाने तीन !....हैं न उस्मान चचा !...' जुम्मन ने कहा।

'अबे, तेरे बाप को भी कोई चचा था, या मुझे ही मुफ्त में चचा बनाये जा रहा है....' उस्मान ने कहा—'न पिलाना, न खिलाना, बस चचा की दुम बनकर लिपट गए...देखा न रसूल तुमने ?'

'तो अभी तुम लोगों ने नहीं पी है ?....' रसूल ने पूछा।

'तुम्हारी जान की कसम रसूल राजा ! एक कतरा भी पिया हो तो कत्ल कर सकते हो—तुम्हारे लिए साढ़े सात खून माफ !... बोलो, कुछ पिलाते हो आज ?....'

'क्यों नहीं....' रसूल ने कहा, फिर पुकारा—'अरे ओ चिथरू !

तीन पौआ...'

'भाई जुम्मन !....' उस्मान बोला—'रसूल राजा की मिहरबानी से पीने का इन्तजाम तो हो गया। अब बैठोगे भी, या खड़े-खड़े ही पैर की कसरत करते रहोगे ?'

'बैठ यार, बैठ न ! मजे से पी....' जुम्मन बोला बैठता हुआ—'खुश रहो रसूल भाई ! खुदा तुम्हें कयामत में भी दो-चार कुल्हड़ बख्शे...'

होली के नौकर चिथरू ने तीन कुल्हड़ सामने लाकर रख दिया।

जुम्मन बोला—'ईमान कसम रसूल राजा ! आज का कुल्हड़ क्या है, एकदम आग का शोला है...एक घूँट पीते ही वह मजा आ गया कि पूछो मत...मगर....'

'वाह-वाह। मगर पर रुक क्यों गए जुम्मन मियाँ। कह चलो न कि सिर्फ जरा-सी चटनी की कसर रह गई है....'

'वल्लाह ! बिल्कुल ठीक कहा तुमने उस्मान !...क्यों रसूल भैया ! जरा-सी चटनी हो जाय तो क्या बात ? रात के वक्त भी सूरज नजर आ जाय....'

'बोलो, क्या मँगाऊँ ?...' झूमते हुए रसूल ने कहा—'प्याज की पकौड़ी ?'

'अजी, छोड़ो भी रसूल राजा ! आलू-प्याज की पकौड़ी को—यह काफिरों को ही मुबारक हो—हमें तो कलिया चाहिए, गरमागरम शोरबेदार !...'

'ठीक कहते हो जुम्मन तुम....' उस्मान ने कहा—'हड्डी तोड़नेवालों के दांत घास-पात की पकौड़ी खाकर क्या करेंगे...'

कलिया आई, शराब का दौर चला तेजी से। तीनों पीते रहे, झूमते रहे, बक-झक करते रहे।

'अबे जुम्मन !...' उस्मान ने नशे में पुकारा—'तेरी आंखें तो कम्बख्त आसमान पर चढ़ी जा रही हैं मारे नशे के....'

'अबे अपनी हालत तो देख....बड़ा आया है तीसमार खाँ

बन कर...'

'तीसमार खाँ तो सिर्फ तेरे बाप ही थे...'

'तेरी ऐसी की तैसी'—जुम्मन कुर्ते की आस्तीन चढ़ाता हुआ बोला—'उस्मान के नाती ! तुझे लड़ने का हौसला है क्या ?'

'अबे तुझसे डरता ही कौन है—आ न !' उस्मान भी उठ खड़ा हुआ।

'यह ले !...' एक तमाचा।

'तू भी ले !...' एक घूंसा।

और दोनों आपस में भिड़ गए। मुंह से गालियाँ इतनी तेजी से निकलने लगीं कि लाउडस्पीकर भी मात।

रसूल ने अपने वजनी हाथों से दोनों के मुँह पर दो-दो तमाचे जड़ दिए, तब दोनों का नशा उखड़ा। दोनों ने लड़ना बन्द कर दिया और चुपचाप बैठ गए।

'वाह रसूल भैया !'...जुम्मन बोला—'कुरान कसम ! ऐसा तमाचा जड़ते हो तुम कि दिन के वक्त भी तारे नजर आने लगते हैं....क्यों उस्मान मियाँ ठीक है न ?'

'बिल्कुल ठीक जुम्मन भाई ? तमाचा क्या है बिजली का सोंटा है, समझ लो !...तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी जुम्मन ! अल्लाह जानता है, मैंने जान-बूझकर तुम्हें नहीं पटका था—'

'पटका था तो मैंने तुझे'—जुम्मन बिगड़कर बोला—'चोट लगे तुझे, तेरे बाप को, तेरी नानी को...'

'देखो रसूल भैया ! यह बेईमान फिर गरम होने लगा है'—उस्मान ने कहा—'हुक्म दो, तो साले की नाक तोड़ दूं आज....'

'तेरी नाक तो पहले से ही गायब है—तू क्या मेरी नाक तोड़ेगा ?'

'तुम लोग चुपचाप बैठते हो कि नहीं !...' रसूल गरज कर बोला।

'कुरान कसम, बिल्कुल चुपचाप बैठा हूँ रसूल भाई !...लो !.... तुम भी चुप हो जाओ उस्मान मियाँ। रसूल भैया बिगड़ रहे हैं...'

'अबे रसूल की ऐसी की तैसी...यानी...नहीं-नहीं, बोलने की ऐसी-तैसी—अब जो बोले, वह गधा !...'

'जरा-सा पीकर तुम लोग आसमान पर चढ़ जाते हो ?'—रसूल ने कहा।

'पूछो मत रसूल भैया !'—जुम्मन बोला—'यह शराब ऐसी चीज है कि कि पीते ही कुरान कसम इतना लड़ने का जी चाहता है कि बदन की रगें फटने लगती हैं...'

'और पियोगे ?....' रसूल ने पूछा।

'अपनी जान की कसम ! अब मत पिलाओ रसूल भाई ! एक कतरा भी गले के नीचे उतरा कि बदन में आग लग जायगी...क्यों जुम्मन ?'

'दुरुस्त ! और लपटें भी निकलने लगेंगी'....जुम्मन ने कहा।

रसूल ने अपने लिए एक कुल्हड़ और मँगवाया और धीरे-धीरे पीने लगा।

'रसूल भैया....!' जुम्मन ने धीरे से कहा।

'क्या है ?'

'एक बात कहूँ ?....'

'बेहतर है...' बोला रसूल।

'देखो बुरा न मानना ! कुरान कसम ! अगर तुम बुरा मान गये तो हम बिना मारे ही मर जायँगे...'

'अबे तू कह भी तो—'

'पपिहरा जो है न रसूल भाई ?....यानी तुम्हारी पपिहरा जो है न....'

'क्या हुआ उसे ?'

'माफ करो करो रसूल भैया ! उसे आजकल पर निकल रहे हैं....पर, यानी उड़ने वाले पंख !....'

'क्या मतलब तुम्हारा ?' रसूल गम्भीर आवाज में बोला।

'पपिहरा पर पहरा लगा दो रसूल भैया ! नहीं तो किसी दिन

फुर्र...यानी उड़ जायगी'—कहकर उस्मान हँसने लगा।

रसूल की लाल आँखें चमकने लगीं भयानक गति से, जुम्मन और उस्मान डर गये। जुम्मन गिड़गिड़ाकर बोला—'मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ। चींटी को मरते वक्त पंख निकलते हैं, मगर पपिहरा को जवानी में ही पंख निकल आये हैं। तुम्हें होशियार हो जाना चाहिए.....क्यों उस्मान?'

'ठीक है....' उस्मान बोला—'हमने उसे एक दिन कैलाश के दोस्त के साथ तालाब पर देखा था...और आज तो....'

'आज तो वह खलील के साथ तालाब पर बैठी घुल-मिलकर बातें कर रही थी—' जुम्मन ने कहा—'कुरान कसम! पंख पूरे निकल आये हैं, अब उड़ने भर की देर है....'

सुन रहा था रसूल।

उसने हाथ का कुल्हड़ जमीन पर पटक दिया और उठ खड़ा हुआ। नशे से दिमाग भन्ना रहा था। पैर लड़खड़ा रहे थे।

उसने अपना बरछा उठाया और जाने लगा।

'कहाँ चल दिये रसूल भाई?...' जुम्मन ने पूछा।

'पपिहरा के पंख का काटने, ताकि वह उड़ न सके....' रसूल लपक कर बाहर चला गया।

उसके जाते ही जुम्मन और उस्मान ठठाकर हँस पड़े।

जुम्मन बोला—'कैसा चंग पर चढ़ाया बेटा को...'

'ईमान कसम जुम्मन....! तुम चिड़िया का पंख अच्छी तरह पहचानते हो...'

× × ×

रात काफी बीत चली थी।

पपिहरा रसूल का इन्तजार करते-करते सो गयी थी....और सपने में भी उसके आँसू सूखे नहीं थे शायद।

वह रो रही थी। नींद में हिचकियाँ ले रही थी। छातियों का उठना-बैठना दीवट के धुंधले प्रकाश में दिखाई पड़ रहा था। वह

खलील से सुन चुकी थी कि दीपक कल गाँव छोड़कर चला जायगा। फिर जाने कब उससे भेंट हो।

यही था उसके दुख का कारण, जो सपनों की दुनिया में भी उसे चैन से नहीं रहने दे रहा था।

पपिहरा आज अन्दर से दरवाजा बन्द करके सोई थी।

'पपिहा !...' किसी ने पुकारा।

पपिहरा चौंककर उठ बैठी, बोली—'आई भैया ?...'

उसने दरवाजा खोला।

अन्दर आते ही रसूल ने उसे पीटना शुरू कर दिया। बोला—'आज तेरी जान लेकर छोड़ूँगा शैतान कहीं की...'

पपिहरा रोती रही, मगर चीखी-चिल्लाई नहीं।

'खलील के साथ आज तू तालाब पर क्या कर रही थी ?... बोल !...बोल ?...'

हाथ अविराम गति से प्रहार कर रहे थे। मगर पपिहरा मूक थी।

'अरे हरामी ! उसे क्यों मार रहा है ? क्या उसकी जान ही ले लेगा ?'—वसीदा थी, लाठी लिए दरवाजे पर खड़ी।

रसूल के हाथ रुक गये। पपिहरा दौड़कर बुढ़िया के बदन से लिपट गई।

'या खुदा ! पीकर यह बेईमान हैवान बन जाता है'...वसीदा ने पपिहरा का सर सहलाते हुए कहा—'फूल-सी बच्ची को तोड़कर रख दिया....इसके मारे सोना हराम !....क्यों मार रहा था इसे ?.... बोलता क्यों नहीं ?....तेरा हाथ सड़कर गिर पड़ेगा किसी दिन...'

'दादी !'....रसूल बोला—'यह दिन पर दिन शैतान होती जा रही है। मेरे मुख पर कालिख लगा रही है...'

'अरे हरामी के पिल्ले ! तेरे मुंह पर तो खुदा ने ही खुद कालिख लगा दी है, उस पर कोई दूसरी कालिख क्या चढ़ेगी ? त इतनी बेदर्दी के साथ मार क्यों रहा था इसे ?'

'इससे पूछो दादी, कि तालाब के किनारे खलील के साथ क्या

कर रही थी ?'

'तेरा मुँह झोंस रही थी, और क्या कर रही थी'—बसोवा बिगड़कर बोली—'तुझमें रहम तो है हो नहीं, अक्ल भी नदारत !.... सुन रे छोकरे ! इसे तो मैंने ही खलील के साथ तालाब पर भेजा था। यह मनमारे बैठी रही इसीलिए भेज दिया। तू अपने ही जैसा सबको समझता है ? खलील इसका साथी है। दोनों को साथ-साथ देखकर तेरे दीदे क्यों फूटने लगते हैं ?....चल री बच्ची ! इस हरामी का साथ छोड़—चल मेरे साथ सो रह !....'

बुढ़िया पपिहरा को अपने साथ लिवा ले गई।

रसूल बड़ी देर तक वहीं बिना हिले-डुले खड़ा रहा। पपिहरा को मारते-मारते उसके हाथ दर्द करने लगे थे और दिल भी कराह रहा था उस मासूम पर प्रहार करके।

रसूल का दिमाग कुछ-कुछ ठिकाने आ गया था। उसे जुम्मन और उस्मान पर बेहद क्रोध आ रहा था। पपिहरा को खलील के साथ देखकर उनकी आँखें क्यों फूटीं ? वे तो लड़कपन से ही साथ-साथ खेलते आ रहे हैं।

रसूल का सारा बदन क्रोध से काँपने लगा। उसने बाहर निकल कर झोपड़ी का दरवाजा बन्द किया और पत्थर के चबूतरे पर सोने के लिए बढ़ा।

उसने देखा, दो आकृतियाँ चबूतरे पर बैठो हैं। रसूल को आते देखकर वे दोनों उठ खड़ी हुईं।

'पपिहरा के पंख काट चुके रसूल भाई ?'–जुम्मन की आवाज थी।

शायद आग लगाकर जुम्मन और उस्मान घर का जलना देखने आये थे।

'उसके पंख तो काट चुका'....रसूल बोला गरज कर—'अब तुम दोनों के पंख काटूँगा।'

रसूल क्रोधित था और उसका सारा क्रोध उन दोनों को पीठ पर बरसने लगा लात-घूँसे बनकर।

वे दोनों अब भी नशे में थे। जुम्मन चीखता हुआ बोला—'बस बस करो रसूल भैया! कुरान कसम! हमारे पंख एकदम ही कट चुके। देख लो, एक भी पंख बचा हो....'

'अबे ओ जुम्मन!'—उस्मान बोला—'बस पड़े-पड़े लात घूंसे खाता चल, घर का खाना बच जायगा आज! ईमान कसम! क्या मीठी-मीठी लातें और रसदार घूंसे पड़ रहे हैं....अरे इधर नहीं—इधर मत मारो रसूल भैया! यह तो मुंह है....'

'कसम कुरान की'—जुम्मन बोला—'इसके मुँह पर ही मारो रसूल भाई! इसकी जबान कैंची की तरह कचाकच चलती है...'

रसूल का एक लात जब उस्मान की पसली पर पड़ा तो वह दर्द से चीख पड़ा—'ईमान कसम! गदहे भी क्या रसूल भाई की तरह लत्ती झाड़ सकेंगे....'

उनकी बहक सुनकर रसूल का क्रोध और भी भभक पड़ता था। अन्त में जब मारते-मारते वह थक गया, तो चबूतरे पर आ बैठा।

जुम्मन बोला—'देखा न उस्मान! आखिर रसूल भाई थक ही गये। इन्सान कोई मशीन थोड़े ही हैं कि दनादन पिस्टन चलाता जाय...चलो, अब रसूल भैया को थोड़ा-सा आराम करने दो....'

दोनों आगे बढ़ चले। रास्ते में जुम्मन से उस्मान ने कहा—'यार जुम्मन! इस गदहे के बच्चे रसूल ने तो लत्ती झाड़-झाड़कर अपना कचूमड़ ही निकाल डाला....'

'कसम कुरान की, इस गांव में धोबी कम और गदहे ज्यादा हैं....अरे!...उस्मान मियां! मेरे मुंह से लार बहने लगी!....'

उस्मान ने चांद की रोशनी में उसका मुंह देखा तो चीख पड़ा—'अबे! लार नहीं खून है....चाट ले, चाट....'

× × ×

ओस चाट-चाट कर रात की रानी अपनी प्यास बुझाती रही और सलोना चांद आसमान की छाती पर मुस्कराता रहा।

सबेरा हुआ! रसूल सोया ही था। पपिहरा ने आकर उसे जगाया। वह आंख मलता उठ बैठा।

सामने से एक इक्का गुजरा। दीपक जा रहा था शहर को। बगल में कैलाश था। एक लठैत हाथ में दो नली बन्दूक लिए इक्केवान के पास बैठा था।

पपिहरा ने देखा। दीपक से उसकी आँखें चार हुईं। उसका हृदय हाहाकार कर उठा। जी में आया कि वह दौड़कर दीपक के सीने से जा लगे और कहे—'शहर के छैला गाँव की गोरी के सीने में आग लगा कहाँ चले जाते हो?...'

'किया है कत्ल जो मुझको, जरा-सी देर तो ठहरो—
तड़पना देख लो मेरा, लहू बहता है बहने दो...'

उसने ओढ़नी से आँसू पोंछ लिए, ताकि रसूल देख न सके।

इक्का आगे बढ़ गया। रसूल दाँत पीस रहा था।

बोला—'साँप की रखवाली के लिए बन्दूक रहती है साथ में और गाँव की इज्जत लूटने के लिए शहर से भेड़िए बुलाए जाते हैं—तुफ् है ऐसी इन्सानियत पर...'

पपिहरा ने वे वाक्य सुने। उसका दिल रो रहा था। अनजाने में एक सिसकी उसके मुँह से निकल गई।

रसूल तेज स्वर में बोला—'पपिहरा! रो रही है तू?'

'नहीं भैया!...' बोली पपिहरा—'मैं हँस रही हूँ। बहन की दुनियाँ उजाड़ कर तुम भी चैन नहीं पाओगे रसूल भैया!....'

'शैतान, बद्दुआ देती है...' रसूल बिगड़ा—'शर्मोहया को घोलकर पी गई है तू!'

'इन आँसुओं ने ही शर्मोहया को घोलकर बहा दिया है....' पपिहरा न जाने किस साहस से बोली—'तुम मुझे सता लो जितना जी चाहे। तुम्हारे कोई सगी बहन होती तो शायद इतने जालिम न बनते तुम?'

पपिहरा के ये वाक्य साँप बनकर रसूल के कलेजे में रेंगने लगे। पत्थर का सीना भी चोट खाकर 'हाय-हाय' कर उठा।

रसूल उठकर पपिहरा के पास आया और उसका हाथ पकड़कर

अपने पास चबूतरे पर ला बिठाया।

बोला—'पपिहा! तू मेरी बहन नहीं, मैंने तुझे कभी बहन नहीं माना। हमेशा तुझे दुश्मन की बेटी समझा और अपने इन्तकाम के लिए पालता रहा। तुझे अपने जिस्म का एक हिस्सा समझा। मेरे दिल में तेरी मुहब्बत है और मैं सच कहता हूँ तेरे न रहने पर मेरी दुनिया वीरान हो जायगी! मुझे तू अपना हमदर्द समझ, भाई ही समझ ले तू मुझे....मगर खुदा के लिए उस शहरी साँप को भूल जा। मैं सब कुछ बरदाश्त कर सकता हूँ, मगर तेरी आँखों में दीपक के लिये आंसू नहीं देख सकता। मैं उससे नफरत करने लगा हूँ! दूसरे की बहू-बेटियों को राहेबद पर ले जानेवाले मेरी निगाह में बेहद जलील हैं। तेरे बाप ने मेरी बीवी को बरगलाया था, उसका इन्तकाम मैंने तुझे यहाँ लाकर ले लिया।

याद रख! मेरे दिल से रहम भाग चुकी है! अब तुझे ताजिन्दगी मेरे साथ रहना है—बहन बनकर ही रह मगर तुझे मैं अपने से अलग नहीं कर सकता। तू पड़ी रह चुपचाप। मैं तेरे लिए अच्छा-सा दूल्हा ला दूँगा, जो यहीं हमारे साथ रहेगा।....मैं बहुत तकलीफें उठा चुका हूँ और आज जो कुछ तू मुझमें देख रही है वह मजबूरी की निशानी के खौफनाक नजारे हैं। मुझे उम्मीद है कि तू अपने भैया को ज्यादा तकलीफ अब नहीं देना चाहेगी....सोच तो जरा कि तू जब दूसरे की हो जायगी तो मुझे कौन पूछेगा? मुझे सहारा देने के लिए कौन रह जायगा यहाँ?...'

चुप हो गया रसूल तो पपिहरा की आँखों से चौधारे आंसू निकलने लगे। करुणा का बाँध टूट गया। सहानुभूति पाकर रुँधा हुआ गला हिचकियाँ लेने लगा।

रसूल पपिहरा के सर पर हाथ फेरता रहा और वह रोती रही।

'देख पपिहा!....' बोला रसूल—'पाल-पोस कर बड़ा बनाने की सजा क्या तू मेरे मुँह पर कालिख लगाकर देना चाहती है?....अब तू बच्ची नहीं रही। नादानी छोड़ और ऊँच-नीच समझकर चल...मैं

नहीं जानता था कि इतने दिनों का मेरा प्यार भूलकर तू एक परदेसी के लिए इस कदर मायूस होगी....'

'मैं अब मायूस नहीं होऊँगी भैया !....' पपिहरा सिसकती हुई बोली—'तुम खुश रहो। मैं अपने दिल को तोड़कर तुम्हारी ख्वाहिशों पर चलूँगी...तुमने मुझे पाला-पोसा है, मैं तुम्हारी खुशी के लिए अपनी हरसतों का खून करूँगी...'

पपिहरा के दिल का खून हो गया।

पपिहरा का दिल टूटा, मगर जबान चुप रही। कोई सुनने वाला नहीं, कोई हमदर्द नहीं—सभी हँसने वाले।

वसीदा उस नादान छोकरी की मायूसी पर परेशान है।

एक दिन बोली वह—'अरी बन्नो !...'

'मुझे अकेली छोड़ दो दादी !...' पपिहा करुण स्वर में बोली।

'सुन तो छोकरी। यह तूने अपनी क्या हालत बना रखी है ?...' बोली वसीदा—'अभी कल फूल-से बदन पर जवानी आई और आज पंखड़ियाँ टूटकर जमीन पर बिखर गयीं। मुझसे बता न तू, तेरी जिन्दगी में यह कैसा पतझड़ आया ?....'

'मुझे कोई तकलीफ नहीं दादी ! तुम खामखाह परेशान मत हो...'

'या खुदा ! इस छोकरी को थोड़ी-सी अक्ल दे...यह आजकल अपनों से भी जलने लगी है...'

कहती हुई वसीदा चली गयी।

पपिहरा की आँखों से आँसू छलक पड़े। वह खुद जलना चाहती थी, मगर किसी कि हमदर्दी पाने की अभिलाषिनी नहीं थी।

उसी दिन तालाब के किनारे—

'पपिहा....'

'आओ खलील !....'

'तेरी आँखें कभी खुशी के फूल भी बिखरायेंगी या हमेशा मायूसी के काँटे ही बिछाती चलेंगी ?....' बोला खलील पपिहरा के पास

बैठता हुआ—'खुदा कसम ! तू बिलकुल मुर्दा होती जा रही है आजकल ! गुमसुम बैठी रहती है। बता न, तेरी बचपन की सारी हरकतें क्या हुई ?'

'खलील ! तुम सब कुछ समझते हो...' बोली पपिहरा—'तुम्हीं बताओ, यह गम मैं कैसे बरदाश्त करूँ !....दुनिया चाहती है कि वह सताये और मैं रोऊँ नहीं, वह जुल्म ढाये और मेरी आँखें हँसती रहें।'

'दुनिया और दुनियावालों की बात छोड़ो....' खलील ने कहा—'मेरी बात मानों तो कहूँ ?'

'कहो, मानूँगी !...'

'चलो कैलाश भैया से दीपक का पता पूछ लें और किसी दिन रात में निकल चलें उसकी खोज में....'

'खलील !....' पपिहरा ने बेताबी से खलील का हाथ पकड़ लिया—'यह नसीहत मुझे मत दो खलील ! मैं गाँव छोड़कर भाग न सकूँगी...'

'देख पपिहा ! अगर दर्द पाला है तूने तो दवा की खोज कर। हँसने दे दुनिया को, करने दे लोगों को इशारेबाजियाँ....'

'रसूल भैया को मालूम हो गया तो आफत आ जायगी।'

आधे घण्टे बाद हवेली में—

'अरे, कैसे आई पपिहरा तू ?...' कैलाश बोला।

'मैं इसे घसीट लाया यहाँ कैलाश भैया...' खलील ने कहा।

'बैठो तुम लोग....'

दोनों जमीन पर बैठ गये। पपिहरा का सर नीचा था। वह जमीन की छाती पर दीपक को खोज रही थी।

कैलाश बोला—'यह वही पपिहरा है न—पहचान में ही नहीं आती...'

'फूल की खुशबू तुमने छीन ली कैलाश भैया तो मुरझाया फूल कैसे पहचान में आ सकेगा ? खुदा के फजल से तुम भी पूरे सैय्याद निकले छोटे सरकार !...' बोला खलील।

'मैं क्या करूँ ? दीपक का यहाँ रहना खतरनाक था—रसूल जो न कर डाले। इसलिए उसे शहर भेज देना पड़ा....'

'तुम्हीं इस नादान को समझाओ छोटे भैया ! यह मरी जा रही है ! खाना-पीना सब कुछ छोड़ दिया है इसने...तुमने अक्लमन्दी से काम नहीं लिया छोटे भैया ! तुम्हारे हाथों में ताकत थी। एक नहीं हजार रसूल तुम्हारा क्या बिगाड़ सकते थे ?'

'मगर इसमें हमारी कितनी बदनामी होती खलील ! स्वयं पिताजी भी बिगड़ जाते। तुम इसको धीरज दो। मैं धीरे-धीरे कोशिश करता रहूँगा। दीपक और पपिहरा कभी अलग नहीं हो सकते अब...'

'मगर धीरे-धीरे की कोशिश कारगर नहीं होगी, इस बेचारी की जान तड़पते-तड़पते निकल जायगी...'

'पपिहा !...' कैलाश बोला—'तू अपने को सम्हाल ! इस तरह शोक करके तू अपने को नष्ट कर लेगी....'

'कैलाश भैया। मुझे अब जीने की चाह नहीं रही....' पपिहरा कैलाश का पैर पकड़कर रोने लगी।

'दीपक का पता क्या मुझे बताओगे छोटे भैया ?....' खलील ने कहा।

'क्या करोगे ?...'

'कभी-कभी पपिहरा के लिए उसकी खोज-खबर ला दूँगा...'

'मगर तुम वहाँ पहुँच नहीं सकोगे खलील ! वह बड़े आदमी का दरबार है, गाँव के जमीन्दार की हवेली नहीं... फिर भी कभी जाना चाहो तो मेरी चिट्ठी लेकर जा सकते हो। वह शहर में स्टेशन के पास ही रहता है लाल-कोठी में...'

'अच्छा तो चलूँ छोटे भैया !...' दोनों बाहर आये।

पपिहरा घर आई तो देखा रसूल पीकर आज जल्दी ही आ गया था। उसे देखकर लाल आँखें लिए उसके सामने आ खड़ा हुआ।

'कहाँ गयी थी तू ?....' पूछा उसने।

'तालाब पर....'

'और कौन था ?'

'खलील !....'

'इस खलील के बच्चे की एक दिन मैं गर्दन तोड़ दूँगा....' रसूल बिगड़ा - 'अब कभी उसके साथ तुझे देखा तो ठीक नहीं होगा...!'

'.............' पपिहरा चुप।

'हवेली क्यों गई थी तू ?'

'... ....' पपिहरा सन्न।

'जवाब दे...' गरजा रसूल।

'मैं हवेली नहीं गई थी...'

'झूठी कहीं की....जुम्मन कहता था मुझसे। उसने तुझे खलील के साथ हवेली में घुसते देखा था। अब दीपक न रहा, तो कैलाश... क्यों, कमीनी कुत्ती कहीं की....' नशे में बक रहा था रसूल।

'रसूल भैया !...' पपिहरा तेज स्वर में बोली--'तुम मुझ पर कितना कीचड़ उछालोगे ? पीकर तुम अन्धे बन जाते हो....'

'अन्धा बन जाता हूँ....'

दाँत पीसकर झपटा रसूल और पपिहरा के गालों पर दो तमाचे जड़ दिये। पपिहरा भागकर बसोदा के झोपड़े में घुस गई।



रात को बड़ी देर तक लिखता रहा, सो इस समय काफी दिन चढ़ आने पर आँखें खुली हैं। लिखते-लिखते आँखें इतनी थक गयीं हैं कि देख सकना मुश्किल है। कान सचेष्ठ हैं और चारों तरफ होता हुआ हो-हल्का मैं स्पष्ट सुन रहा हूँ।

हा-हा-हा-हा !

यह हँसी की आवाज कैसी ?

ध्यान लगाकर सुनने लगता हूँ। अरे, यह आवाज तो मेरे घर के अन्दर से ही आ रही है।

इस हँसी में दो-दो रागों का सम्मिश्रण है।

मर्द की आवाज हरीप्रसाद की है और जनानी आवाज है अपनी देवीजी की।

यह हरीप्रसाद इतने सबेरे यहाँ क्या करने आया है और घर के अन्दर देवीजी के पास बैठकर कौन-सी उलझन सुलझा रहा है और फिर दोनों की यह सम्मिलित हास्य ध्वनि !

कलेजे का एक-एक रग अगम घृणा से भर उठा है।

हा-हा-हा-हा ! इस बार की हँसी सुनकर मुझे बेहद क्रोध चढ़ आया है। आँखें फट पड़ना चाहती हैं। हाथ की मुट्ठियाँ कस कर बँध गई हैं। मैं सुन रहा हूँ।

'ले लो भाभी ! इन रुपयों को रख लो। इनको लेने से अगर तुम इनकार करोगी तो मेरा दिल टूट जायगा।' हरीप्रसाद है।

'मैं इन्हें नहीं लूँगी देवरजी....' देवीजी बोल रही हैं—'वे अभी सोये हैं, जग जाने पर मुझे बिगड़ने लगेंगे।

'तुम्हें लेना ही पड़गा ! ले लो इन्हें। मुझे गैर मत समझो। मैं तो तुम्हीं लोगों का हूँ।'

आवेश में भरकर मैं अपने कान बन्द कर लेता हूँ। मैं नहीं सुनना चाहता इन सब बातों को।

'अरे भाई, तुम उठ गये...' हरीप्रसाद बाहर आकर बोल रहा है—'मैं देख रहा हूँ, तुम्हारी तबीयत दिन पर दिन खराब होती जा रही है। अपने स्वास्थ्य का ख्याल रक्खो। भाभी और बच्चे तुम्हारे ही सहारे हैं। रुपयों की जरूरत के वक्त मुझे गैर मत समझना.... अच्छा चलूँ, दुकान पर जाना है।'

चला गया है हरीप्रसाद, तभी अन्दर से देवीजी आ पड़ती हैं।

मुझे बाहर बैठा देखकर उन्हें आश्चर्य होता। कहती हैं—'अरे, तुम कब के जगे हो ? मैं तो जान ही न पाई....'

'जानती कैसे ?' मैं हूँ—'हँसी-हल्ले में कान जरा कम काम कर पाते हैं....'

वे—'हरीप्रसाद आये थे....तुमसे भेंट हुई ?'

'हाँ...' कहकर मैं चुप रह जाता हूँ।

वे कहती हैं—'आज वे फिर बीस रुपये जबरदस्ती दे गये हैं, मैं तो लेती ही न थी....'

मैं—'चलो, यह भी अच्छा ही हो रहा है—मैं खुश हूँ, अच्छा रास्ता तुमने अख्तियार कर लिया है....'

वे—'यह क्या कहते हो तुम ?'

मैं—'कहूँगा क्या ? समाज का डर है, नहीं तो तुम्हें स्वतंत्र कर देता...आज तुम्हारे मुख से इतनी स्पष्ट हँसी मैंने पहली बार सुनी है, सो भी एक पराये पुरुष के सामने। नहीं जानता था कि जो कोष तुमने अब तक अपने पति से छिपाकर रखा था, उसे दूसरों को लुटाने लगोगी....'

कहते-कहते रुक जाता हूँ और दोनों हाथों से अपना मस्तक पकड़ लेता हूँ—

'जरा चप्पल और वह हस्तलिपि तो ला देना...'

'क्या करोगे ? कहाँ जाओगे ?'

'शहर जाऊँगा'—मैं कहता हूँ।

वे—'मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी—तुम उतनी दूर पैदल नहीं जा सकते....'

मैं—'मुझे रोकने की चेष्टा छोड़ो देवी ! तुम रहने दो, मैं स्वयं हस्तलिपि ले लूंगा....'

मैं धीरे से उठ पड़ता हूँ। अन्दर आकर मुँह धोता हूँ, फिर पैर में चप्पल डाल और हाथ में हस्तलिपि लेकर बाहर की ओर बढ़ता हूँ।

मैं यथाशक्ति तेजी से बाहर आता हूँ।

यह लीजिए, चिन्तन में रास्ता कितनी जल्दी कट गया। बीच शहर में आ पहुँचा हूँ। यह रही एक छोटे से प्रकाशक की दुकान 'श्यामसुन्दर ब्रदर्स'—श्यामसुन्दर जी दुकान पर बैठे हैं। पैर उस ओर बढ़ चले हैं। दुकान के सामने आकर खड़ा होता हूँ।

'अरे राजा बाबू ! किधर से टपक पड़े हैं आज ?'

'ऐसे ही चला आया आपके दर्शनार्थ !'—मैं बोलता हूँ।

'इधर कोई नवीन रचना की या नहीं ?' श्यामसुन्दर जी हैं।

'हाँ ! की तो है, लाया भी हूँ—दिखाऊँ आपको ?' मैंने हस्तलिपि उनके सामने पेश कर दी है।

वे उलट-पुलट कर उसे देखने लगे हैं। मेरी साँस रुक गई है। उनका निर्णय सुनने के लिए कान बेहद बेचैन हैं।

'यह क्या ? पुस्तक अधूरी है क्या ?'

'जी हाँ ! बात यह है कि कुछ रुपयों की बहुत जरूरत थी, इसलिए....'

'महाशय ! आप कैसे लेखक हैं ? इतना भी नहीं समझते कि अधूरी किताब देखकर कौन प्रकाशक इसे पसन्द करेगा और रुपये देगा ? रुपये तो किताब छपकर सौ-दो सौ प्रतियाँ बिक जाने पर दिए जा सकते हैं...आप पहले किताब पूरी लिखकर लाइये, तभी हम अपना निर्णय दे सकते हैं ..'

मैंने हस्तलिपि धीरे से उठा ली है और उसे सीने से लगाए बढ़ चला हूँ। दूसरे प्रकाशक का द्वार खटखटाया है मैंने।

'देखिये साहब !'—वे कहते हैं—'आपका नाम तो काफी प्रसिद्ध है, इसलिए मैं अधूरा उपन्यास रख लेता हूँ। पूरी कहानी लिखकर दे देने पर मैं आपको केवल बीस रुपये दे सकता हूँ। मैं स्पष्ट कह देता हूँ। आपको स्वीकार हो तो इसे छोड़ जाइए। पूरी पुस्तक मिलने पर आपको रुपये दे दिये जायँगे...'

'मगर बीस रुपये तो बहुत कम हैं लालाजी !...'

'अजी साहब ! बीस रुपये तो हम लोग बीस जन्म में कमा पाते हैं—इससे अधिक हम नहीं दे सकते...'

और यह रहा तीसरे प्रकाशक का आफिस !

'कहिये ?'—सेठ साहब मेरी तरफ घूमे हैं।

और मैंने चुपचाप अपनी हस्तलिपि उनके सामने रख दी है।

'ओह ! आप राजाबाबू हैं—मैं आपको पहचानता नहीं था'—कहकर वे हस्तलिपि उलटने लगते हैं।

मेरी सांस फिर ऊपर-नीचे करने लगी है।

तब तक वज्र प्रहार की तरह सेठजी का स्वर कर्ण-कुहरों में प्रवेश करता है—'हम लोग अधूरी पुस्तकें नहीं देखते साहब। इतना फजूल समय हमारे पास नहीं...'

वे हस्तलिपि मेरे आगे फेंक देते हैं, इस तरह की मेरा हृदय हाहाकार कर उठता है। कहता हूं सहमें स्वर में—'पुस्तक रोचक हैं साहब! मेरी अन्य पुस्तकें तो आपने देखी ही होंगी....'

'देखी है...खैर, तो आप यह पुस्तक कब तक हमें पूरी करके दे रहे हैं?'

'बहुत जल्द!....'

'हम इस पुस्तक को छापकर देखेंगे कि कैसी चलती है। चल निकली, तो दूसरा संस्करण प्रेस में देने के पहले आपको पचास रुपया दे देंगे—मगर कापीराइट का बाण्ड आपको अभी भरना पड़ेगा....'

'धन्यवाद!...' ग्लानि और क्रोध में भरकर मैं हस्तलिपि उठा लेता हूं और बाहर निकल आता हूं!

शहर का अब कोई प्रकाशक नहीं बचा है। यों तो अन्य प्रकार की पुस्तकें छापने वाले कई एक हैं, उपन्यासों का प्रकाशक केवल यही तीन करते हैं।

मेरे पैर अपने आप सड़क छोड़कर पगडण्डी पर बढ़े जा रहे हैं, घर की तरफ।

दरवाजे के सामने खड़ा होता हूं, तो दरवाजा बन्द और अन्दर से हा-हा-हा-हा की अविराम ध्वनि और दो सम्मिलित रागों का एकाकार होकर हँसना। कान खड़े हो जाते हैं।

मैंने अपना कलेजा मजबूत कर लिया है और कान बन्द कर लिए हैं, फिर भी अन्दर की बातचीत जैसे आवरण हटाकर कान के परदे फाड़े डाल रही है।

'तुम कितनी अच्छी हो भाभी!....जी चाहता है कि तुम्हें देखता ही रहूं। तुमने जादू कर दिया है मुझ पर भाभी!'

'मैं क्या जानूँ जादू-टोना ?...तुम्हारी किसी बहन ने जादू कर दिया होगा देवर !....'

'ठीक कहती हो भाभी तुम ! तुम्हारी बहनें हैं भी तो बला की तीरन्दाज...और तुम क्या किसी से कम हो ?....किसी अच्छे घर में पड़ी होती तो चाँद बनकर लोगों के सीनों पर चमकती...'

'यह तो अपना-अपना भाग्य है देवर जी !....' कहकर देवी जी ने ठण्डी साँस ली है।

'तुम्हारा भाग्य तुम्हारे वश में है भाभी ! चाहो तो मेरा सहारा लेकर इसे अभी पलट सकती हो....'

मैंने सुना है और बिना हिले-डुले खड़ा हूँ। बदन का तरलोष्ण रक्त पत्थर बनता जा रहा है। धड़कन धीरे-धीरे चलने लगी है।

तभी—'चलूँ भाभी ! अब तो रोज ही तुम्हारा दर्शन हुआ करेगा....'

और दूसरे ही क्षण दरवाजा खुलता है। हरीप्रसाद खड़ा है मेरे सामने। शैतान का बच्चा मुझे साँप समझ कर चौंक पड़ता है। कहता है—'हें-हें, कब लौटे शहर से राजा भाई !....तुम्हारी किताब बिक गई ?'

मैं चुपचाप अन्दर चला आता हूँ और वह नवाब का बच्चा जवाब न पाकर चला जाता है।

मुझे देखकर वे मुस्कुरा पड़ती हैं।

मैं कहता हूँ—'यह हरीप्रसाद तो आस्तीन का साँप बनता जा रहा है....'

वे—'क्या मतलब ?'

मैं—'यही कि वह रात के अंधेरे में चुपके-चुपके तुम्हें डँसने आता है।'

वे—'क्या एक दोस्त का अपने दोस्त के घर जाना पाप है ?'

'वह मेरा दोस्त है...' मैं तेज आवाज में कहता हूँ—'मगर वह कौन है ? वह मेरे पास कभी नहीं बैठता और तुमसे

रात में भी मुलाकात कर जाता है....'

'यह तुम क्या कहते हो ?....' देवीजी का स्वर भी काफी तेज हो गया है—'यह तुम नहीं बोल रहे हो, तुम्हारा विकृत मस्तिष्क बोल रहा है। तुम्हारे हृदय में शंका लहरें ले रही है....'

'चुप रहो तुम !...' मैं तड़प उठता हूँ—'मेरी आँखें देख सकती हैं, मेरे कान सुन सकते हैं, मेरा मस्तिष्क सोच सकता है...मैं अन्धा नहीं, बहरा नहीं, पागल नहीं ?....'

'या ईश्वर ! मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ ?....' वे तेजी से कहने लगती है—'सहनशक्ति की भी एक सीमा होती है। पुरुष कितने कठोर होते हैं। स्वयं चाहे तो सैकड़ों नारियों से हँसे-बोलें, मगर पत्नी को अपने मित्र से भी मिलने देना नहीं चाहते....तुम रोज दरवाजे पर बैठकर निठल्लों की तरह पियारी रानी से आँखें लड़ाया करो और मैं भूखा पेट लेकर केवल तुम्हारा ही मुख देखती रहूँ। क्या यही न्याय है ?'

देवीजी की एक-एक बात सुनकर मैं करुण स्वर में कहता हूँ—'देवी ! मुझे चाहे तुम्हारी जरूरत हो परन्तु मैं यह जान गया हूँ कि तुम्हें अब मेरी जरूरत नहीं रही, क्योंकि तुम मेरे साथ नहीं रह सकती....अच्छा हुआ कि तुम्हें अपना पेट भरने का एक सहारा मिल गया। रह गया मैं—सो कहीं न कहीं से टुकड़े मिल ही जायँगे...लो चलता हूँ मैं, जीवन के दौरान में कभी यदि मेरी आवश्यकता प्रतीत हो तो याद कर लेना...'

मैं घूम पड़ता हूँ, दरवाजे की ओर। देवीजी दौड़कर मेरे सामने आ खड़ी होती है। विकल होकर पूछती हैं—'कहाँ जा रहे हो ?'

मैं—'जहाँ पैर ले जायँ...'

वे—'इतना बड़ा दण्ड मुझे मत दो तुम !'

मैं—'मुझे रोकने की चेष्टा व्यर्थ है...तुम खुश रहो, फूलो-फलो...'

देवीजी ने मेरा पैर पकड़ लिया है, मगर मैं उन्हें झटक देता हूँ।

वे—'तुम मुझे छोड़कर जा रहे हो और चाहते हो कि विपत्ति के समय मैं तुम्हें पुकारूँ ?...जाओ मगर यह मत समझना कि दुःख के समय कोई तुम्हें पुकारेगा। तुम्हें स्वयं आना पड़ेगा। नहीं आओगे तो यह नारी तुमसे सुहाग की भीख माँगने नहीं जायगी....'

देवीजी दौड़कर घर के अन्दर हो जाती हैं। मैं खड़ा हूँ बाहर, अन्दर से उनकी हिचकियों की आवाज आ रही हैं। दिल पिघलना चाहता है, परन्तु घृणा की धारा बड़ी प्रबल है।

मेरे पैर उठ पड़ते हैं। शरीर लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ जाता है। मेरी प्रेयसी, मेरी अधूरी पुस्तक मेरे कलेजे से लगी है।

मंजिल की शुरुआत हो गई है, देखें अन्त कहाँ होता है।

● ●

पपिहरा के पङ्ख काट दिये गये और उसकी हर गतिविधि पर रसूल की कड़ी नजर रहने लगी। वह दिन-रात झोपड़े में ही पड़ी रहती। कभी-कभी तालाब पर भी जा बैठती छिपकर, ताकि कोई देख न ले कि रसूल के कानों में भनक पड़ जाय।

रसूल की रफ्तार वही बेढंगी चल रही है। खूब पीता है। अकसर पपिहरा को पीट भी देता है नशे में और नशा उतर जाने पर उसे दुलारता-पुचकारता भी है।

वसीदा की खाँसी आजकल बढ़ गई है, सो वह अपनी झोपड़ी में ही सीमित रहती है। शायद ही कभी बाहर निकलती हो।

रसूल की डाँट खाकर खलील भी आजकल इधर बहुत कम आता है। कभी आया भी तो चुपके से पपिहरा का कुशल-क्षेम पूछकर भाग जाता है।

इस प्रकार दो-तीन महीने बीत चले हैं। अब पपिहरा अपने एकान्त जीवन से ऊब गई है। उसका स्वास्थ्य भी दिन पर दिन गिरता जा रहा है। चेहरा मलिन हो गया है। आँखें काले गड्ढों के

बीच घिर गई हैं। हर समय शरीर अलसाया-सा रहता है। रात को ताप बढ़ जाता है। अक्सर उल्टी हो जाया करती है।

शाम हो गई थी। रसूल होली में बैठा हुआ बोतल का जहर पी रहा था, इधर झोपड़ी में पपिहरा खटोले पर पड़ी हुई दीपक के विषय में सोच रही थी। लाठी की ठक-ठक आवाज हुई और वसीदा दरवाजे की राह अन्दर आई।

'अरी चुड़ैल !...' बोली वह—'यह रात का अंधेरा है या तेरे चेहरे का कालापन ? दीया क्यों नहीं जलाती रे हरामी !....'

'अभी जलाती हूं दादी ! आओ बैठो...' क्षीण स्वर में पपिहरा ने कहा और उठकर दीवट जला दिया।

'क्यों री बन्नो !...इन गांववालों के मुंह में कीड़े पड़ गए हैं क्या, या उनकी जबान सड़कर गिरी जा रही है ?'

'हुआ क्या ?...'

'तेरे बारे में गांव भर में यह क्या अफवाह फैल रही है...' बुढ़िया बोली—'सुनते-सुनते कान में फोड़े निकल आए, मगर कहने वालों की जबान का नासूर अच्छा नहीं हुआ ! जितने मुंह उतनी बात—किसकी-किसकी जबान पकड़ी जाय...सभी तो ऐसा कहते हैं...यह तो बता तेरी यह हालत कैसी हुई जा रही है ?'

'मैं बिल्कुल ठीक हूं दादी !....' पपिहरा ने कहा—'बदन में थोड़ा-थोड़ा दर्द रहता है और कभी-कभी उल्टी हो जाती है—बस !'

'बस ?....इधर आ, तेरा बदन तो देखूं....' बुढ़िया ने पपिहरा का बदन टटोलना शुरु कर दिया। पेट पर हाथ फेरते ही बुढ़िया चौंक पड़ी, फिर गम्भीर होकर बोली—'क्यों री हरामी ! यह क्या है ? मैं पूछ रही हूं, तेरे पेट में यह कौन-सा जानवर पल रहा है ?'

'क्या है यह दादी ?'

'हरामी की पिल्ली ! यह हमल है, समझी ?...'

'दादी !....' सुनकर पपिहरा व्याकुल हो बोली—'मैं मां बनकर

क्या करूँगी दादी ! रसूल भैया सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? मैं कैसे जिन्दा रह सकूँगी ?...'

'खुदा बड़ा कारसाज है री छोकरी ! राहेबद पर चलनेवालों को वह ऐसी ही सजा देता है...अब समझ में आया कि गाँववाले क्यों इतनी बदनामी कर रहे हैं तेरी...'

'अब मैं क्या करूँ दादी ? मैं कहाँ जाऊँ ?...'

'डूब मर....' बुढ़िया बोली—'तालाब तो पास ही है। रसूल के मुँह पर कालिख लगाते तुझे शर्म नहीं आई ? अब जो कर चुकी है, उसका अंजाम भुगत...सारा ऊँच-नीच मर्द के साथ सोने के पहले ही सोच लिना होता....बता न, वह कौन कुत्ता है, जिसने तुझे इस कदर जलील किया है ? क्या यह खलील की करतूत है ?....'

'नहीं दादी !...कैलाश भैया के दोस्त दीपक ने मुझे तबाह किया है !

'वही छोकरा, जिसकी तूने कई दफा मेरे सामने तारीफ की थी ? तो अब उसके नाम पर क्यों झींक रही है सुअर की बच्ची ?.... कहाँ है वह शैतान आजकल ?'

'वे शहर चले गए हैं....मगर दादी, मेरे सामने उन्हें बुरा-भला न कहो....बरसाती नाले को कोई रास्ता नहीं दिखाता। वह खुद ही रास्ता खोजकर बह निकलता है....मैं खुद गिरी हूँ। सारा कसूर मेरा है...'

'कसूर तो तूने किया, मगर भरी पंचायत में रसूल का सर नीचा होगा....'यह गाँव है। यहाँ का कानून सबके लिए एक है... तूने अच्छा नहीं किया बन्नो !....'

बुढ़िया उठी और लाठी ठेगती हुई बाहर निकल गई।

दो घण्टे बाद !बुढ़िया वसीदा अपने झोपड़े में बैठी खाँस रही थी, तभी—'दादी....'

'अरे रसूल !....आ बैठ। कहाँ से आ रहा है बेटा ?'

'होली से....' रसूल धीरे से उसके पास जमीन पर बैठ गया,

बोला—'होली में घुसते ही उस्मान और जुम्मन की बातचीत मैंने सुनी और बिना पीये ही लौट आया। सोचा पी लूंगा, तो दिमाग बेकाबू हो जायगा... दादी! क्या सचमुच पपिहरा के पैर भारी हो रहे हैं आजकल?'

'हां, रे हां! तूने ठीक सुना....' बुढ़िया बोली—'मैं अभी देखकर चली आ रही हूं। इस छोकरी ने तेरी नाक काट ली....'

'इसके बाप ने मेरी दुनियां बरबाद की थी और इसने मेरी नाक काट ली....' रसूल के मुख पर करुण हंसी फूट पड़ी—'बाप-बेटी दोनों एक दूसरे से बढ़कर निकले....जमाना ही ऐसा है दादी!....'

वह धीरे से उठा और बाहर जाने लगा।

वसीदा ने पुकारकर कहा—'देख रे लड़के, अगर छोरी पर जरा भी हाथ उठाया तो ठीक नहीं होगा। गलती तो सभी से होती है बेईमान!....'

'हां दादी! मैंने भी तो गलती की जो उसे अपने पास उठा लाया और पाल-पोसकर इतनी बड़ी किया।'

बाहर आकर रसूल अपने झोपड़े में घुसा, पुकारा—'पपिहा!....'

पपिहरा दीवार से कान लगाये वसीदा और रसूल की सारी बातें सुन रही थी। रसूल की आवाज सुनकर चौंक पड़ी।

बोली—'भैया!....'

'इधर आ!...' रसूल का स्वर नम्र था।

पपिहरा धीरे-धीरे उसके सामने आ खड़ी हुई। देखा उसने, रसूल की आंखों के अंगारे पानी बनकर पिघल उठे हैं और गालों पर बह रहे हैं। वह बेचैन हो उठी। रसूल जैसा राक्षस रो भी सकता है, यह उसने कभी सोचा तक न था। वह दौड़कर उसके चौड़े सीने से लिपट गई और बोली—'रसूल भैया!....'

रसूल अवरुद्ध कण्ठ से बोला—'रसूल के मुख पर तूने गहरा तमाचा जड़ दिया है और जब आंसू निकलने लगे हैं तो घबड़ाई क्यों जा रही है तू?...'

'मुझे मार डालो भैया तुम !'

'मार डालूं ? जिसे अपनी जान समझकर जिलाया, उसका खून करूं ?...तुफ है मेरी मर्दानियत पर...'

'मुझे माफ कर दो रसूल भैया ! मैं पापिन हूं, डायन हूं, जलील हूं...'

'चुप !....तू मेरी बहन है। अगर यह अलफाज किसी दूसरे के मुंह से निकले होते, तो उसकी जबान खींच लेता....तू इत्मीनान रख। तूने गलती की है तो हिम्मत के साथ लोगों की इशारेबाजियां बर्दाश्त कर....'

'मगर तुम ! तुम क्या सह सकोगे भैया ?....खून कर दोगे...'

'नादान लड़की ! मैंने आज से शराब न छूने की कसम खा ली है....मेरा दिमाग ठीक रहे तो मैं इन्सान को पानी कर दूं सिर्फ बातों से, खून करने की क्या जरूरत ?....मगर पपिहा तूने यह अच्छा नहीं किया। मैंने तुझे पाला-पोसा और उसका बदला तूने मेरी इज्जत को हलाल करके दिया...खुदा की मर्जी ! अब जाकर सो रह....मैं भी बाहर चबूतरे पर पड़ जाता हूं।'

रसूल बाहर निकलकर पत्थर के चबूतरे पर आ लेटा। घण्टों बीत चले, परन्तु उसे नींद नहीं आई, तो वह उठकर बैठ गया और माथे पर हाथ देकर सोचने लगा।

सुबह हुई, मुर्गे ने बांग दी, चहल-पहल मची, सूरज निकला।

पपिहरा सोकर उठते ही बाहर आई तो रसूल को चबूतरे पर चिन्तामग्न बैठे देखा !

'उठ गए भैया ?'

'हां—अभी उठा हूं...' जरा-सा मुस्कुरा कर साफ झूठ बोल गया रसूल। पपिहरा को अपनी व्यथा दिखाकर वह दुखित नहीं करना चाहता था।

'रात को तुमने कुछ खाया नहीं था भैया ! जल्दी से कुछ बना दूं ?...'

'सबेरे-सबेरे लगी सर खाने'—रसूल ने मधुर झिड़की दी—'जा, अपना काम देख। तूने तो इतनी बदनामी दे दी है मुझे पपिहा कि जिन्दगी भर के लिए मेरा पेट भर गया है....तू चली जा अन्दर। ठाकुर दादा के लठैत आ रहे हैं...'

गाँव के जमींदार एवं कैलाश के पिता को लोग अक्सर ठाकुर दादा ही कहकर सम्बोधित करते थे।

पपिहा अन्दर चली गई। दो हट्टे-कट्टे लठैत रसूल के सामने आ धमके। एक बोला—'आज रात में हवेली पर पंचायत होगी। ठाकुर दादा ने तुम्हें आने को कहा है....'

'आऊँगा...' शुष्क-गम्भीर वाणी में बोला रसूल।

'और....' दूसरा लठैत बोला—'पपिहरा को भी पंचायत में पेश करने को....'

लठैत अभी पूरी बात कह भी न पाया था कि रसूल तड़पकर बोला—'चुप रहो। पपिहा गाँव की लौंड़ी नहीं, रसूल की बहन है। पंचों के बाप भी उसे पंचायत में नहीं बुला सकते...जाओ तुम लोग, ठाकुर से कहना कि रसूल पंचायत में आयेगा, मगर पपिहा नहीं...'

रसूल का क्रोध देखकर लठैतों की लाठी ऊपर से नीचे तक काँपने लगी और वे तुरन्त दुम दबाकर भाग खड़े हुए। वह बड़ी देर तक बैठा रहा, फिर उठकर तालाब की ओर चला गया।

पपिहरा ने लठैतों और रसूल की बातचीत सुनी थी और वह समझ गयी थी कि आज भरी पंचायत में रसूल का सर जरूर नीचा होगा। तो वह कैसे बचाये अपने भैया की इज्जत? कैसे विश्वास दिलाये पंचों को कि अपराध पपिहा का है, रसूल का नहीं?

दोपहर को रसूल घर पर नहीं आया। पपिहरा लिट्टियाँ बनाकर उसकी प्रतीक्षा करती रही। वह भी कम व्यथित नहीं थी।

शाम होने पर रसूल लौटा। पपिहरा ने उसकी मुखाकृति देखकर समझ लिया कि आज उसने पी नहीं है। रसूल का चेहरा गम्भीर था, आँखें स्थिर थीं। उसने झोपड़ी के कोने में रखा हुआ

अपना बरछा उठा लिया और बाहर जाने लगा। पपिहरा ने उसे रोका, बोली—'कहाँ जा रहे हो भैया ?'

'पंचायत है आज हवेली पर'—बोला रसूल—'वहीं जा रहा हूँ। देर हो जाय तो तू खाना खाकर सो रहना—समझी ?'

'मगर पंचायत में इस बरछे का क्या काम भैया ?'

'तू समझती नहीं...आज सारा गाँव एक तरफ हो गया है। इस बरछे का मेरे साथ रहना बहुत जरूरी है। पता नहीं, कब इसका काम पड़ जाय...'

'तुम पंचायत में न जाओ भैया !....' पपिहरा गिड़गिड़ाकर बोली—'या जाओ तो इस बरछे को यहीं छोड़ जाओ। मुझे डर लगता है रसूल भैया ! तुम जाने क्या गजब कर डालो ?....'

'मैं अपने होशोहवास में हूँ पपिहा !'—रसूल ने कहा—'खुदा कसम, एक कतरा भी हलक के नीचे नहीं उतरा है। तू घबड़ा नहीं।' कहकर बरछा लिये रसूल बाहर चला गया।

पपिहरा खटोले पर आ बैठी। अनजाने में ही आँखें आँसू उगलने लगीं। आज पता नहीं पंचायत में क्या हो ? जिस रसूल का सर नींद में भी आसमान ताका करता था, वह आज जमीन की धूल में कैसे लोट सकेगा ? जो हमेशा शेर की तरह दहाड़ता आ रहा था, वह आज हाथ जोड़कर पंचों के सामने कैसे खड़ा हो सकेगा ?

यह सारा कसूर पपिहरा का है। पपिहरा ने रसूल का सर नीचा किया है। उसे डूब मरना चाहिए। उसे जीने का कोई अधिकार नहीं।

मगर पपिहरा अपनी जान नहीं देना चाहती। उसके पेट में दीपक की ज्योति पल रही है। वह उस ज्योति की रक्षा करेगी और उसे इस संसार में प्रकाशित करेगी। वह अब बच्ची नहीं, होनेवाली माँ है और एक माँ को अपनी संतान का मोह होता ही है।

परन्तु एकदिन, जब कि इस ज्योति से झोपड़ी की जीर्ण दीवारें आलोकित होंगी तो गाँववाले कितनी आफत मचायेंगे, रसूल का रास्ता चलना मुश्किल हो जायेगा, लोगों की कटूक्तियाँ जहरीला तीर

बनकर कानों में चुभेंगी। क्या करे पपिहरा ? अपने रसूल भैया को बदनामी से वह कैसे बचाये ? खलील उसके बचपन का साथी है। हँसने के समय उसने उसे चिढ़ाया है और रोने के समय उसने आँखों से आँसू टपकाये हैं। सुख में पपिहरा के साथ खेला-कूदा है और दुख में उसने उसे तसल्ली दी है।

वह अभी खलील के पास जायगी और उसका पैर पकड़कर कहेगी—'बचपन के साथी ! बहुत दिनों तक साथ-साथ हँसे खेले हो, अब थोड़े दिनों तक साथ-साथ रो भी लो। मेरी जिन्दगी की नाव आज डूब रही है। थोड़ा सहारा दे दो तुम, तो मैं भी पार उतर लूँ।'

× × ×

'सहारा चाहती है तू पपिहा ?...मेरा सहारा ?...' खलील गम्भीर स्वर में बोला—'मैं तैयार हूँ। मैं तेरा साथ दूँगा, तेरी किश्ती को किनारे से लगाऊँगा....रसूल भैया को बदनामी से बचाना चाहती है न तू ? अब सिर्फ एक ही रास्ता है...'

'कौन सा ?'—

'यहाँ से उड़ चल—कहीं दूर...'

'यह नहीं होगा खलील मुझसे ! मैं ऐसा नहीं कर सकूँगी। मैं रसूल भैया को अकेला कैसे छोड़ सकती हूँ ?....'

'तो यहीं पड़ी रह....जिस दिन तेरे बच्चा होगा, उस दिन रसूल का चेहरा गाँव भर के थूकने से सफेद हो जायगा...और याद रख, रसूल भाई जैसा जवाँमर्द तालाब में डूबकर अपनी जान न दे दे, तो कहना....'

'खलील !'—पपिहरा घबड़ाकर बोली—'मैं चलूँगी खलील ! जहाँ तुम कहो, वहाँ चलूँ....'

'तुझे मैं शहर ले चलूँगा और स्टेशन के पास लालकोठी में दीपक की खोज करूँगा....कैलाश भैया ने यही पता बताया था न ?'

'हाँ !....'

'जब वह नहीं मिलेगा तो उसकी खोज करेंगे और अगर मिल

गया तो खुदा के फजल से तुझे उसके घर में डाल के ही छोड़ेंगे...'

× × ×

पञ्चायत !

पंच तो केवल पाँच और देखने वाले पाँच सौ से अधिक।

पंच लोग गद्दीदार ऊँचे तख्त पर बैठे हैं। बीच में हैं जमीन्दार ठाकुर, कैलाश के पिता। हवेली का दरवाजा गैस की रोशनी से चमक रहा है। दर्शकगण नीचे टाट पर चुपचाप बैठे हैं। ठाकुर के पीछे एक हट्टा-कट्टा लठैत उनकी दोनली बन्दूक लिए खड़ा है। अन्य दस-बारह लठैत अदब के साथ चारों ओर खड़े हैं।

काला पहाड़ जैसा रसूल सर झुकाये पंचों के सामने खड़ा था।

'रसूल !....'

'........' रसूल ने बड़े कष्ट से सर उठाकर एक बार ठाकुर की ओर देखा, फिर नजरें नीची कर ली।

'हमलोग यहाँ क्यों इकट्ठे हुए हैं, इसे जानते हो न ?'

'जानता हूँ ठाकुर दादा !....' बोला रसूल।

'पंचों का फैसला तुम मानोगे तो ?'—ठाकुर ने पूछा।

'मानूँगा सरकार !....'

'पपिहरा ने जो कुछ किया है, वह तुम्हें मालूम है ?'

'हाँ !...'

'तुमने उसे रोकने की कोशिश क्यों नहीं की ?'

'गलती हुई ठाकुर दादा ! उसी का अन्जाम तो भुगतने आया हूँ यहाँ....'

'पपिहरा की बदचलनी के लिए उसे जो कुछ सजा दी जायगी, उसमें तुम कोई हस्तक्षेप तो नहीं करोगे ?....'

'पपिहरा मेरी बहन है सरकार ? जो भी सजा पंच देंगे, उसे हम दोनों साथ-साथ भोग लेंगे....पंचों से इल्तिजा है कि वे रहम से काम लें। गलती सभी से होती है'—

'पपिहरा को पेश करो...' ठाकुर ने आज्ञा दी।

'वह नहीं आयेगी यहाँ'—बोला रसूल दृढ़ स्वर में—'मैं तो मौजूद ही हूँ। फिर उसका क्या काम ?....'

'पंच कुछ पूछेंगे...'

'मैं खुद पंचों का जवाब दूँगा...'

'रसूल !'—ठाकुर तेज स्वर में बोले—'यह पंचायत है। समझे ! तुम्हें पपिहरा को यहाँ लाना ही होगा....'

रसूल अपने को अब तक संयमित किए हुये था, मगर उसका क्रोध रह-रहकर उमड़ पड़ता था।

बोला वह—'पपिहा यहाँ नहीं आयेगी ठाकुर दादा ! रसूल को किसी काम के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता...'

'सारे गाँव की शक्ति से अकेला रसूल लोहा नहीं ले सकता....' गरज कर बोले ठाकुर।

'ले सकता है सरकार ! मेरा बरछा इस वक्त जमीन पर सोया पड़ा है। हाथ में लेते ही इतनी भेड़ों में किसी की हिम्मत नहीं कि वह मेरे सामने आ सके....'

'रसूल तुम मेरा अपमान कर रहे हो....'

'ठाकुर दादा मेरे बुजुर्ग हैं, मैं उनकी तौहीन कैसे कर सकता हूँ....मगर पंच यह न समझें की अपनी इज्जत के साथ-साथ मैंने अपनी ताकत भी गवाँ दी है...'

रसूल का नीचा सर अब धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा था।

'मालूम होता है कि तुम घर से ही लड़ने का इरादा करके चले हो रसूल !....' ठाकुर ने क्रोधमिश्रित स्वर में कहा।

बोला रसूल—'ठाकुर दादा। लड़ने का इरादा करके नहीं, हाँ तैयारी करके जरूर चला हूँ। लड़ने का इरादा करके चला होता, तो अब तक मेरा सर इस कदर नीचा न बना रहता....'

कहकर रसूल ने अपना सर एकदम ऊपर उठा दिया और आँखों से एक बार अपने चारों ओर देखा, फिर तनकर खड़ा हो

गया। दृढ़ स्वर में बोला—'क्या मैं पञ्चों से कुछ सवाल पूछ सकता हूं ?'

'तुम्हारा इरादा क्या है रसूल, पूछो क्या पूछते हो ?'

'मैं पूछता हूं कि आज गाँव के अन्दर दूध से धोया हुआ कौन है ?....जब आसमान पर टिके हुए चांद के जिस्म में बड़ा-सा काला धब्बा मौजूद है तो जमीन के कीचड़ में रहनेवाले इन्सानों की क्या हस्ती ?....' रसूल कहता रहा—'पपिहा नादान है, उसने गलती कर डाली—मैं उसका भाई हूं, मेरी बदनामी हो गई, सर नीचा हुआ। क्या इतने से गाँव वालों की निगाहें ठण्डी नहीं हुईं। जलील को पंचायत में बुलाकर और जलील करना यह कहाँ का इन्साफ है ठाकुर दादा ? मेरे और पपिहा के मामलों में दखलन्दाजी करने का पञ्चों को क्या अख्तियार है ? कोई आसमान छूये या जमीन पर बैठे, इसमें गाँववालों का क्या इजारा ? नीचे गिरनेवाला खुद ही अञ्जाम झेलेगा....फिर भी...फिर भी....'

'रसूल !....' बूढ़े ठाकुर तीव्र स्वर में बोले—'पञ्चों को तुम्हारे मामले में हाथ डालने का पूरा अधिकार है। गाँव में कितनी ही युवतियाँ हैं और अगर समाज का बन्धन तोड़ दिया जाय, तो सभी बरबाद हो जायँगी। किसी का डर न रहेगा, सब लोग मनमाना व्यवहार करने लगेंगे। पपिहरा ने अपराध किया है, दण्ड उसे भुगतना ही पड़ेगा....'

'ठाकुर दादा ! अगर पपिहा कसूरवार है तो कैलाश भैया उससे भी बढ़कर कसूरवार हैं जो शहर से शहरी नाग लाकर गाँव में लोगों को डँसने के लिए छोड़ देते हैं...अगर पपिहा को सजा मिलती है तो छोटे भैया को उससे भी कड़ी सजा मिलनी चाहिए... पञ्चों के सामने अपनी यह दरख्वास्त पेश करता हूं। कैलाश भैया के दोस्त ने मेरी इज्जत बरबाद की और ये देखते रहे, क्या यह कम कसूर है ?....'

'रास्ते में सभी जगह काँटे मिलते हैं रसूल ! मगर चलनेवालों को देखकर ही चलना चाहिए...पपिहरा ने अन्धी बनकर काम किया है, कसूर उसी का बड़ा है, कैलाश का नहीं....'

'कैलाश भैया आपके बेटे हैं ठाकुर दादा ! इसलिए बेकसूर हैं और पपिहा मेरी बहन है, इसलिए कसूरवार हैं...आज सारा गाँव एक होकर मेरी इज्जत ले रहा है...मैं पूछता हूँ कि अगर साँप किसी को डँस ले और पकड़ में आ जाय, तो क्या उसे बिना जान से मारे छोड़ दिया जाता है ?....साँप ने मुझे डँसा, मैंने उसे पकड़ा, मगर बन्दूक का मुँह दिखाकर मेरे हाथ रोक दिये गये, मैं उस साँप का गला टीप नहीं सका—साँप भाग गया और आज यहाँ पञ्चायत जुटी है यह फैसला करने के लिए कि साँप ने मुझे क्यों डँसा ? अच्छा इन्साफ है पञ्चों का...कैलाश भैया उस शहरी नाग को यहाँ लावें और मैं उसकी गर्दन तोड़ दूँ, तभी पञ्चों का फैसला मुझे कबूल होगा, वर्ना....'

'वर्ना क्या ?....' तैश में आकर बूढ़े ठाकुर उठ खड़े हुए और गरजे ।

'वर्ना मैं इस पञ्चायत पर लात मार कर घर जाता हूँ । जिसमें हिम्मत हो वह मुझे रोक ले...'

रसूल ने झुककर बरछा उठाया, जाने लगा ।

'ठहरो रसूल !....जान प्यारी हो तो ठहर जाओ....'

रसूल धीरे से लौट पड़ा । आकर ठाकुर के सामने खड़ा हो गया । बन्दूक की नली उसकी छाती से एक फुट के फासले पर थी ।

बोला वह—'मुझे रोकने के लिए बन्दूक की क्या जरूरत ठाकुर दादा ?....रसूल भागना नहीं जानता । ललकारने वाले के सामने मैं सीना तानकर खड़ा होना जानता हूँ...' रसूल ने अपने कुर्ते की बटनें खोल कर छाती नंगी कर दी—'लो ठाकुर दादा ! तुम्हारे निशाने पर का पतला परदा भी मैंने हटा दिया है । जान लेने का

शौक हो तो चलाओ गोली और एक मर्द का हँसते-हँसते मरना देख लो, रोते-सिसकते मरने वाले तो बहुत देखे होंगे।'

ठाकुर की बन्दूक तनी रही, परन्तु गोली नहीं छूटी।

रसूल एक मिनट तक निश्चल खड़ा रहा, फिर बोला—'मैं जानता हूँ कि ठाकुर दादा के हाथों में बन्दूक पकड़ने की ताकत भले ही हो मगर दिल में किसी की जान लेने की हिम्मत नहीं....'

रसूल ने अपने कुर्ते की बटनें ठीक कर लीं, फिर पञ्चायत पर उसकी जलती आँखें उठीं—'मैं चलता हूँ। अगर किसी ने मेरे और पपिहा की इज्जत पर आँख दिखाई, तो मैं उसकी देखने की ताकत तहोबाला कर दूँगा....'

चला गया रसूल! ठाकुर की तनी बन्दूक टहनी की तरह नीचे झुक गयी। किसी ने रसूल को रोका नहीं।

'पपिहा!...' घर आ जाने पर उसने दूर से ही पुकारा। जवाब न पाकर उसने दरवाजा छुआ, तो चौंक पड़ा। सांकल बाहर से बन्द थी। रसूल के कलेजे का एक कोना तीव्र वेग से धड़क उठा।

बगल में वसीदा का दरवाजा उसने खटखटाया—'वसीदा दादी! पपिहा तुम्हारे पास सोई है क्या?'

'रात में भी सोने देगा या नहीं तू?...' अन्दर से बुढ़िया बोली—'मेरा घर न हुआ, पिञ्जरा हो गया, जो पपिहरा को बन्द करके रखूँगी....'

रसूल ने अपना माथा पकड़ लिया। पपिहरा इतनी रात गये कहाँ जा सकती है!

वह तेजी से बढ़ चला उसकी खोज करने। सभी सो रहे थे, दरवाजा खटखटाकर सबसे पूछा उसने, परन्तु पपिहरा न मिली।

रास्ते में खलील का अब्बा मिल गया।

'रसूल! तुमने खलील को देखा?'

'और तुमने क्या पपिहा को देखा है? वह तुम्हारे यहाँ तो नहीं?....'

'नहीं ! खलील भी शाम से ही घर से लापता है—पपिहरा आई थी शाम को, वह उसी के साथ चला गया। कह गया कि अभी आता हूँ, मगर नहीं आया....'

'दोनों कमबख्त कहीं चल दिये चचा !...' कहकर रसूल दौड़ पड़ा वहाँ से और आस-पास के दो-चार कोस तक के गाँवों में पपिहरा की खोज करता हुआ रात भर तक भटकता रहा।

सबेरे सूरज निकलते ही वह लौटा। हट्टा-कट्टा रसूल थककर चूर हो गया था। पैरों में गर्द की तह जमी हुई थी। आँखें आँसू से भरी थीं। आकर धम्म से पत्थर के चबूतरे पर गिर पड़ा।

उसकी आँखें पानी उगल रही थीं। बर्फ जैसा कठोर कलेजा आज करुणा की गर्मी पाकर पिघल रहा था। फौलाद को पपिहरा ने मोम का टुकड़ा बना दिया था।

पपिहरा को पंख लग गये थे न !

• •

आज चौथा दिन है घर से निकले। पेट एकदम भूखा है और खाली पानी पीकर रहने से यह शैतान चिल्ला रहा है। मगर इसके लिए कहाँ से लाऊँ खाना ?

भिखारियों का वेश हो गया है मेरा और अपने शहर से दूर किसी दूसरे शहर में आ पड़ा हूँ। होगा कोई शहर ? नाम से मुझे क्या वास्ता—काबा हो या काशी ! पैर बढ़ते जा रहे हैं। यह है गंगा-तट ! प्रसिद्ध घाट, जहाँ स्नानार्थियों की भीड़ कूड़े की मक्खियों की तरह भनभना रही हैं। नारी और पुरुषों का इस तरह सम्मेलन हो रहा है कि शायद वैसा बिस्तर पर भी न होता हो।

गंगा के किनारे आसमानी कँगूरेवाले मन्दिरों में पत्थर के देवता निवास करते हैं !...और निर्जीव आँखोंवाले ये देवता पुजारियों और भक्तों का अनाचार हमेशा देखा करते हैं ?

मानव का भूत जितना उज्ज्वल था, वर्तमान उतना ही कालिमामण्डित है—भविष्य कैसा होगा इसे कौन जाने ?

लीजिए ! भूखा पेट फिर आर्तनाद करने लगा है, जिससे पैर थर्रा उठे हैं। मैं सड़क के किनारे बैठ जाता हूँ। आँखें आधी बन्द कर लेता हूँ। सोचने लगता हूँ। बड़ी देर तक सोचता रहता हूँ।

'चित्रा का क्या लेगा !....' एक बाबूजी हैं।

'एक रुपया !....' रिक्शावाला बोला है।

और बाबू जी बैठ गये हैं। एक रुपया ! चार कदम ले चलने का एक रुपया ! आश्चर्य है ! कितना अच्छा धन्धा है यह !

मैं भी यही काम करने लगूँ तो ?

शायद उमराव नहीं तो अमीर जरूर बन जाऊँ।

उठकर चल दिया हूँ। रिक्शा कम्पनी की खोज में हूँ, जो मुझे किराये पर चलाने के लिए रिक्शा दे सके।

लीजिए, ज्यादा दूर जाना नहीं पड़ा....यह है रिक्शा कम्पनी और ये हैं खड़े हुए दस-पाँच तैयार रिक्शे।

'क्या चाहता है ?...' सेठ जी बोले हैं।

'एक रिक्शा दे दो मालिक। पेट भर जाय तो दुआ दूँगा...' लहजे में मैं कहता हूँ।

× × ×

पैरों में हिमालय जैसी गुरुता आ गई है और पके फोड़े जैसा दर्द भी उठ खड़ा हुआ है। सोचता हूँ, अब रिक्शा चलाना बन्द कर दूँ—

एक सूनी गली के नुक्कड़ पर रिक्शा रोक दिया है। रिक्शे की पर आकर मैं बैठ गया हूँ। विचार के घोड़े दौड़ चले हैं। जाने -क्या सोचने लगा हूँ।

तभी—'ओ रिक्शेवाले !...'

कान के बिलकुल पास कोई चिल्लाया है। एकदम अँधेरा हो गया है। देखता हूँ तो दो आकृतियाँ खड़ी हैं बगल में।

'चलोगे स्टेशन ?....'

'आइये साहब ! चार आने दीजिएगा...' मैं कहता हूँ ।

'तीन आने में चलोगे ?....'

'आइये !...'

मियाँ साहब बैठ गये हैं । दूसरी छाया जब आगे बढ़ी है तो चूड़ियों की खनक से यह स्पष्ट हो गया है कि कोई 'जनाना' साहिबा हैं । मैं रिक्शा लेकर चल देता हूँ । तभी रिक्शे पर कुछ कसमकश होने लगती है । ठीक सामने देख रहा हूँ, मगर पीछे से आती हुई फुसफुसाहट की आवाज से दोनों कान घोड़े के कान की तरह सजग हो गये हैं ।

'खुदा कसम ! एक दे दो...बस एक !...तुम्हारे दिल की कसम, बहुत दिनों से बेकरार हूँ—शबोरोज तुम्हारी याद सताती है...'

'तुम बड़े वैसे हो—कुछ ख्याल भी है ? रिक्शे पर बैठे हो—सड़क है, कोई देख ले तो ?....'

'कोई नहीं देखेगा—खुदा कसम ! कोई देख भी नहीं सकेगा—यह रिक्शा हमारे लिए जन्नत की सरजमीं है—मुझे नाउम्मेदी में गर्क न करो मेरी जान !...'

'देखो...देखो....या अल्लाह ! मेरी कलाई !....बड़े सङ्गदिल हो गफूर ! जरा ठहरो...उफ् !....'

इसके बाद हवा पर तैरती हुई चुम्बन की एक मादक ध्वनि मेरे कानों में आ पड़ी है । मेरा कलेजा धड़कने लगा है । मैंने एक हाथ से अपना सीना दबा लिया है, ताकि कलेजा छिटककर हैण्डिल पर न आ बैठे ।

रिक्शा तेज कर दिया है मैंने और आँखें मूंद ली हैं । दूसरों की चुहलबाजी देखकर मैं अपने एकाकीपन पर तड़पने लगा हूँ ।

'तभी अब्बा-हजूर मुझे तुम्हारे साथ नहीं आने दे रहे थे....' वह बोली है, जैसे आवाज के साथ पीपे का पीपा शहद सड़क पर लुढ़क गया हो ।

'मगर तुम्हीं तो जिद्द करके मेरे साथ आई....' वह बोला है—

'अब तो दो-चार रोज तक सफर में साथ रहेगा ही, फिर इब्तिदा में ही यह ना-नुकर अच्छी नहीं शीरीं...'

उसका नाम कितना अच्छा है—शीरीं।

यह लीजिए। रिक्शा इतना हिल क्यों रहा है? सीमेंट की सड़क के सीने पर जख्म भी तो नहीं हैं।

'जरा ठीक से बैठिये साहब!....' मैं कहता हूं—'रिक्शा कमजोर है, कमानी टूट न जाय?'

लीजिए। स्टेशन आ गया। अंधेरे में हिलता हुआ रिक्शा उजेले में आकर सीधा हो गया। मेरे हाथ पर तीन आने पैसे आ गये हैं। रिक्शाभी खाली हो गया है। नजरें बेताब होने लगी हैं, शीरीं का चांद जैसा मुंह देखने के लिए। मगर चांद पर तो बदली छा गयी है। सर से पर तक बुर्के का आडम्बर पड़ा है।

मैं रिक्शे की सीट पर आ बैठा हूं। थक भी काफी गया हूं। अतः रिक्शा अपने मुहल्ले की ओर मोड़ देता हूं।

जी हां! अब तो मैं घर-त्यागी हूं न। अपना घर इस शहर में कहां, सो कुलियों....कबाड़ियों को बस्ती में एक जीर्ण-शीर्ण कमरा किराये पर ले लिया है और उसी में अपना संसार बसाकर सन्तुष्ट हो गया हूं।

लगभग साल भर से रिक्शेवाले का जीवन व्यतीत कर रहा हूं। पेट भर जाता है। रात में मिट्टी के तेल की ढिबरी के चीण प्रकाश में थोड़ा-सा 'पपिहरा' भी लिख लेता हूं। घर की, गांव की और देवीजी तथा मुन्ने की याद आती ही नहीं। कितना निष्ठुर हूं मैं।

कभी-कभी मस्तिष्क में देवीजी के प्रति दया का आविर्भाव होता है; परन्तु दूसरे ही चण उससे दुगुनी घृणा उठ खड़ी होती है। पति को त्याग कर 'यार' से आंखें 'चार' करने वाली नारी को मैं कभी चमा नहीं कर सकता।

लीजिये, मेरा घर आ गया। चारों ओर टूटे-फूटे मकानों के

बीच एक रद्दी स्थान। रिक्शा रोक दिया है मैंने और उसके पहियों में ताला भी बन्द कर दिया है ताकि किसी चोर के हाथों में खुजली न उठ पड़े।

अन्दर आकर ढिबरी जलाता हूँ। दोपहर का कुछ खाना बचा था, सो उसी से पेट-पूजा करने लगता हूँ।

पेट भर गया है और अब चारपाई पर बैठता हूँ। ढिबरी पास में रख लेता हूँ। कलम-दावात-कापी उठाकर सजग हो जाता हूँ।

● ●

पपिहरा के चले जाने पर ही रसूल यह जान सका कि उसका कठोर हृदय भी किसी की याद में तड़प सकता है, उसकी आगभरी आँखें भी कभी आंसू बहा सकती हैं। उसने अब जाना कि वह रो भी सकता है, सिसक भी सकता है, दुखी भी हो सकता है।

रसूल की दुनिया वीरान हो गई। दिन के समय वह खटोले पर पड़ा-पड़ा घर की दीवारों को देखता और रात में पत्थर के चबूतरे पर पीठ के बल लेटकर आकाश के तारे गिनता। पीना उसने बिल्कुल छोड़ दिया। पपिहरा अपने साथ ही उसकी यह बुरी आदत भी लेती गई।

अब वह बाहर भी बहुत कम निकलता, खाना दो-एक दिन पर कभी दो-चार कौर खा लेता। पपिहरा को वह कहाँ पाये, उसे कहाँ खोजे? वह तो उसकी सारी मुहब्बत पर लात मार कर चली गई थी। वह पपिहरा को सिर्फ देखना चाहता है।

वह जानता है कि भले ही उस दिन नशे के शैतान के वश में होकर वह पपिहरा की अस्मत लूटने को तैयार हो गया था, मगर पपिहरा उसे सगी बहन से भी ज्यादा प्यारी है। अभागा रसूल दुश्मन की बेटी को बहन समझ कर तड़प उठता है। सात महीने बीत चुके हैं। रसूल का भयानक शरीर सूखते-सूखते आधा भी नहीं रह गया है। काले चमड़े पर हजारों जगह झुर्रियाँ पड़ गई हैं।

आँखों के अङ्गारे आँसुओं के सागर में डूबकर बुझ गये हैं।

आज उसे बहुत तेज बुखार है। खटोले पर सुबह से ही पड़ा है—इस समय रात हो चली है। पपिहरा होती तो अब तक कितनी घबड़ा जाती रसूल को बीमार देखकर। मगर वसीदा तो उसे केवल धीरज ही बँधाती जा रही है।

'अरे लड़के! तू तो एकदम पागल हो गया है उस छोकरी के पीछे'—बोली वसीदा—'वह चली गई तो जाने दे। घूम-फिरकर कभी न कभी अपने आप आ जायेगी। तू क्यों उसके लिए अपनी जान कुर्बान करता जा रहा है?...'

'दादी!'—रसूल ने क्षीण स्वर में कहा—'मुझे समझाने की कोशिश मत करो। रसूल अब बच्चा नहीं रहा, जो पपिहरा को खोकर गुड़िया से अपना दिल बहला सके...वह चली गई है तो मैं रो-तड़प रहा हूँ—वह आ जायगी तो चुप हो जाऊँगा। तुम्हें घबड़ाने की जरूरत नहीं दादी....'

'अच्छा, अब तू सो जा...'

'तुम सो रहो दादी!....' बोला रसूल—'मेरी बदकिस्मती पर चाँद-सितारे हँस रहें हैं तो मुझे नींद कैसे आ सकती है?...'

'अच्छा रे अच्छा! जागता बैठा रह रात भर—मेरा क्या—मैं तो सो ही जाऊँगी...'

बुढ़िया रसूल के घर में ही टाट बिछाकर जमीन पर सो रही। थोड़ी ही देर में उसकी नाक नींद का बाजा बजाने लगी।

रसूल रात भर जागता, करवटें बदलता ज्वर से तप्त शरीर लिए पड़ा रहा। रात धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई सवेरे के पास पहुँच गई। तभी उसके दरवाजे पर बाहर कोई छोटा-सा बच्चा जोरों से रो पड़ा। रसूल जाग रहा था। अपने दरवाजे पर बच्चे का स्वर सुनकर चौंक पड़ा!

जब बच्चा लगातार बहुत देर तक रोता रहा तो रसूल से नहीं रहा गया। उसने पुकारा—'दादी!...ओ दादी!....'

'क्या है मुए ! मुर्गे की तरह सवेरे-सवेरे बाँग देने लगा—पानी लेगा क्या ?...अरे ! यह तेरे दरवाजे पर कौन-सी चिड़िया बोल रही है....'

'कोई बच्चा है दादी ! रो रहा है...जरा दरवाजा खोलकर देखो तो....'

'तू ही उठकर देख बुखार के बच्चे ! दिमाग तो ठिकाने है नहीं, बच्चा रो रहा है ! तेरी बीवी सी है या बच्चा ही रोने लगेगा ?...'

कहकर बुढ़िया उठी। झोपड़े का दरवाजा खोलकर बाहर आई। रसूल जाने क्यों बहुत उत्सुक हो रहा था। थोड़ी ही देर में वसीदा अन्दर आई। हाथों पर मैले कपड़ों में लिपटा हुआ कोई बच्चा था, जो गोद की गर्मी पाकर चुप हो गया था।

'अरे रसूल !...'

'क्या हैं दादी ?....'

'गुलाब की पंखड़ी थी तेरे दरवाजे पर...देख न ! कितनी मासूम बच्ची है यह !...'

बुढ़िया ने जरा-सा कपड़ा उठाकर बच्ची का मुख रसूल को दिखाया। रसूल चुपचाप उसे देखता रहा—एकटक ! फिर धीरे से दोनों हाथ फैलाकर बोला—'मुझे दे दो दादी इसे—मेरी बगल में लिटा दो....'

बुढ़िया ने चार महीने की उस बच्ची को रसूल की बगल में लिटा दिया। गोरी-गोरी, हृष्ट-पुष्ट, गुलाब की पंखड़ी जैसी उस बच्ची को रसूल बड़ी देर तक अपलक देखता रहा।

'दादी !...' बोला वह—'यह किसकी बच्ची है दादी ?'

'खुदा जाने...कोई हरजाई फेंक गई होगी इसे तेरे दरवाजे पर... गाँव की तो नहीं मालूम पड़ती....'

'या अल्लाह !'—रसूल संभलकर उठ बैठा—'एक पपिहा गई तो तूने दूसरी को भेज दिया....एक को खिलाया-खिलाया तो वह

मेरी जान हलाल कर गई...अब यह दूसरी बड़ी होकर क्या आफत ढायेगी ?....दादी ? कितनी खुशनुमा बच्ची है यह ! देखते ही, सच मानों, मेरा सारा रोग काफूर हुआ जा रहा है। देखो न दादी ! शैतान एकदम खामोश है...'

'तेरी तबीयत बहलाने को आसमान से चांदनी आ उतरी है रे रसूल !....'

'ठीक है दादी ! खुदा जानता है कि इस बच्ची ने एक ही लमहे में मेरे अन्दर मुहब्बत का दरिया बहा दिया है...तुमने क्या नाम लिया दादी ? चांदनी न ! वल्लाह ! नाम भी तो तुमने ऐसा चुना, जैसे समुन्दर से मोती निकाला हो...'

रसूल धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। उस बच्ची को लेने कोई नहीं आया। रसूल और बूढ़ी वसीदा मिलकर उसे पालने लगे।

रसूल हमेशा उस बच्ची को गोद में लेकर बैठा रहता। रूई के फाहे से उसे दूध पिलाता। वसीदा अपने बूढ़े हाथों से उसके बदन पर तेल-उबटन मलती और आँखों में काजल लगाती।

आठ महीने गुजरे, तो चांदनी रसूल को 'बाबा' पुकारने लगी। सुनकर रसूल का दिल हर्ष से गुब्बारा बन गया।

उस रात वह जब बिस्तर पर लेटा तो पपिहरा की याद में उसका दिल जख्मी कबूतर बन गया। वह बड़ी देर तक सो नहीं सका। आँखें अनायास ही आंसू से भरभरा आईं। थोड़ी देर के लिए जब उसे नींद भी आई तो उसने एक भयानक ख्वाब देखा।

देखा—खलील के साथ पपिहरा भीख मांग रही है, लोगों की गालियाँ सुन रही है, और...और एक कार आई तेजी से लपकती हुई। पपिहरा का शरीर कुचल गया। मांस का एक-एक लोथड़ा दर्दभरी सड़क पर छितराकर चीत्कार कर उठा।

'पपिहा !....' बड़ी जोर से चिल्लाया रसूल—

कि बगल से बूढ़ी वसीदा दौड़ी आई। देखा, रसूल सर पकड़े हुए खटोले पर बैठा था। बगल में चांदनी चुपचाप सो रही थी।

'क्या हुआ रे छोकरे ?'

'दादी !...' रसूल ने अपना सर उठाया—'मैं पपिहा के बगैर जिन्दा नहीं रह सकता। अपने को जिन्दा रखने के लिए मुझे पपिहा को वापस लाना होगा...'

'क्या यह बच्ची तुझे पसन्द नहीं ?'

'यह बच्ची मेरे जिगर का टुकड़ा है....मगर यह पपिहा जैसी बड़ी नहीं है, यह मुझे खाना पकाकर नहीं खिला सकती, यह मेरे पैर नहीं दाब सकती, यह मुझे भैया कहकर नहीं पुकार सकती... दादी पपिहा जो थी, वह यह नहीं है...'

'तू चाहता क्या है ?...'

'मैंने एक खौफनाक सपना देखा है दादी !....मैं आज ही, अभी ही पपिहा की खोज में जाता हूँ। जब तक नहीं मिलेगी, वापस नहीं आऊँगा....तुम इस चाँदनी का ख्याल रखना, इसे जरा भी तकलीफ न हो। यह समझ लो कि यह भी मेरी जिन्दगी ही है। जरा भी इसे तकलीफ पहुँची, तो मेरी जान निकल जायगी...'

'तू तो पागल हो गया है—जा, जो तेरे मन में आवे कर...मैं इसे पाल लूँगी....'

रसूल उठा। सन्दूक में से साफ कपड़े पहन कर हवेली की ओर बढ़ा। ठाकुर बाहर टहल रहे थे। रसूल जाकर उनके पैरों पर गिर पड़ा। ठाकुर ने उसे उठाया।

बोले—'अरे रसूल ! कैसा हो गया यह तू ?....'

'पहचान नहीं पाये ठाकुर दादा ?....यह रसूल की लाश घिसट-कर तुम्हारे पास आई है...तुम्हारी बन्दूक की गोली खाये बगैर ही रसूल मर गया है सरकार !....अब दया करो...'

'तुम तो बिलकुल हड्डी बन गए रसूल !'—ठाकुर बोले—'सुना था कि तुम बीमार थे, परन्तु यह बीमारी का लक्षण नहीं, यह तो घुन लगने का आरम्भ है....'

'कैलाश भैया कहाँ हैं ठाकुर दादा ?...'

'तुझे नहीं मालूम ?...वह भी पढ़-लिखकर क्या कम शैतान बना है ?...मैं बुजुर्ग हो गया, सो जमीन्दारी का काम करना तो दूर रहा, बम्बई की किसी फिल्म कम्पनी का दस लाख का शेयर खरीद लिया....आजकल बम्बई की हवा खा रहा है....'

'दीपक का पता तुम्हें मालूम है ठाकुर दादा ?...शायद पपिहा वहीं गई हो....'

'मुझे उसका पता क्या मालूम ?...एक दिन कैलाश कह रहा था कि वह भी बम्बई में डाक्टरी पढ़ रहा है...'

सुनकर रसूल उठ पड़ा।

लम्बे पैर बढ़ाता हुआ वह बढ़ चला शहर की ओर।

• •

सबेरे आँखें खुलते ही सूरज की चमकदार रोशनी चारों ओर देख रहा हूँ। जल्दी-जल्दी हाथ-मुँह धोकर भिगोये हुए चनों का नाश्ता करता हूँ! फिर दरवाजे में छोटा-सा अलीगढ़ी ताला लगाकर रिक्शे की सीट पर आ बैठता हूँ। थोड़ी दूर जाता हूँ, तो देखता हूँ कि बीच सड़क पर एक साहब की कार 'अड़ियल-घोड़ी' बन गइ है। मुझे देखकर कारवाले साहब पुकारते हैं—'रिक्शेवाले !....'

मैं रिक्शे से उतरकर पास जाता हूँ—'क्या हुक्म है हजूर...'

'देखो !...तुम अपने रिक्शे पर इनको घर पहुँचा दो।' फिर वे उन साहिबा से कहने लगे हैं—'शमा ! तुम इस रिक्शे पर घर चली जाओ... मैं कार को ठीक करने का इन्तजाम करता हूँ...'

'जरा जल्दी आना अजीज भाई !....' कहकर शमा रिक्शे में आ बैठी है और मेरा रिक्शा 'लेफ्ट व्हील—डबलमार्च' करने लगता है।

एक आलीशान कोठी के सामने उन्होंने रिक्शा रुकवाया है और उतर कर सामने खड़ी हो अपना मनीबेग खोलने लगी हैं—'कितना दूँ तुम्हें ?....'

'मैं क्या कहूं हुजूर ?....हमदर्दी से दिया हुआ मिट्टी का एक टुकड़ा भी मेरे लिए सोने की मुहर से कम कीमत नहीं रखता—जो मुनासिब समझ दे दें....'

मेरे बोलने के ढङ्ग ने उन्हें चौंका दिया है। वे मेरी तरफ गौर से देखने लगती हैं—'तुम कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेते ? पढ़े-लिखे आदमी का घोड़ा बनना ठीक नहीं...'

'पढ़े-लिखे आदमी तो आजकल गदहे बन गये हैं, मैं तो सिर्फ घोड़ा ही बना हूं...हां ! हजूर ने यह कैसे जाना कि मैं पढ़ा-लिखा हूं ?....'

'अजी हमारी नजरें कसौटी हैं जो सोने को फौरन पहचान लेती हैं—'

'हजूर की नजरें पारस हैं कि लोहा भी सोना बन जाता है....'

'उफ् !' शमा ने मीठी आंखों से मेरी ओर देखते हुए कहा है—'तुम्हारे अल्फाज कितने हसीन हैं। तबीयत करती है कि हमेशा सुनती रहूं तुम्हारी बातें... तुम मेरे यहाँ नौकरी करना पसन्द करोगे ? कहो तो अजीज भाई से कहूं। तुम्हें यहां कुछ भी काम नहीं करना पड़ेगा। यह रिक्शा चलाना छोड़ो....'

कहता हूं—'नौकरी करने से मुझे एतराज नहीं....जहाँ पेट भर सके, वहीं हमारी जन्नत है हजूर !'

और दूसरे दिन से मैं शमा और अजीज का नौकर बन गया हूं। दोनों शरीफ हैं। पढ़े-लिखे, आला खानदान के। धन की कमी नहीं, नौकरों का अभाव नहीं—सो मुझे कुछ भी काम नहीं करना पड़ता, उल्टे दूसरे नौकरों पर हुक्म चलाना पड़ता है।

शमा रानी तो मुझ पर फिदा हैं ही, अजीज भाई भी कम मेहरबान नहीं। मेरे दिन जैसे बादशाहत करते गुजर रहे हैं।

चार महीने तो इस तरह से गुजर गये हैं, जैसे चार मिनट।

'अजीज भाई....' शमा रानी बोल रही हैं—'एक दिन ये तुम्हारे कमरे में बैठे हुए 'दी गुड अर्थ' पढ़ रहे थे और बड़बड़ा रहे थे 'इससे

अच्छा नावेल तो मैं लिखता हूँ—मैं एक-ब-एक ही उधर जा पड़ी थी। इन्होंने कहा था कि अजीज भाई से मत कहना....'

'तो यह बात है!....कहाँ तक पढ़े हो ?....'

'अंग्रेजी और हिन्दी में एम० ए० हूँ...' मुझे बताना पड़ा है।

दूसरे ही दिन से मैं मार-मारकर हकीम बना दिया गया हूँ, यानी अजीज भाई का सेक्रेटरी हो गया हूँ।

शमा को दूध का गिलास लिए खड़ी देखकर मैं पलंग पर उठकर बैठ जाता हूँ। दूध का गिलास हाथों में लेकर चुपचाप पीने लगता हूँ। निगाहें तिरछी करके मैं शमा की ओर देखता हूँ। उसकी साँस तेजी से चल रही है। दूध पीकर मैंने गिलास नीचे रख दिया है।

एकाएक शमा मेरी पलंग पर बैठ जाती हैं, सटकर! मुझे लग रहा है कि निगेटिव और पाजिटिव के करेण्ट एक होकर कहीं बिजली की सृष्टि न कर दें।

'तुम आज चुप क्यों हो ?....' उसने मेरे कन्धे पर अपना हाथ रख दिया।

बोलता हूँ—'नहीं तो—चुप कहाँ हूँ ? चुप तो तुम्हीं हो....'

'तुमने अपना नाम नहीं बताया!...' वह धीरे से कहती हैं।

'सैकड़ों बार तो बता चुका हूँ कि मेरा नाम राजा है....'

'मगर यह नाम मुझसे पुकारते नहीं बनता...'

'क्यों ?....'

'मुझे शर्म लगती है....' उसने कहा है और अपने नाजुक हाथ मेरे गले में डाल दिये हैं।

एकाएक मेरा मष्तिष्क सजग होता है।

पत्नी को दूसरों से हँसते-बोलते देखकर मैंने घर त्यागा था और आज मैं स्वयं पथ-भ्रष्ट होने पर तत्पर हूँ।

'शमा!...' मैं कहता हूँ—'मुझे यहाँ रहने देना चाहो तो अपने को सँभालो...'

'डाल से टूटा हुआ फूल कैसे सँभल सकता है राजा!...'

'तो मैं आज ही यहाँ से चला जाऊँगा....'

और आधी रात को जब सारा संसार नींद के मजे ले रहा है, मैं निकल पड़ा हूँ शमा के घर से। फिर कभी यहाँ न आने की कसम खा ली है। एक हफ्ते से चारों ओर भटकता फिर रहा हूँ, मगर दिल को चैन नहीं आ रहा है। शमा ने मुझ पर जादू कर दिया है। उसके एहसान रह-रहकर मुझे वापिस चलने को बाध्य कर रहे हैं। उसकी आकर्षण शक्ति मुझे खींच रही है।

और आठवें दिन मैं अजीज भाई के सामने खड़ा हूँ।

'अजी, तुम कहाँ चले गये थे ?....'

'एक जरूरी काम था अजीज भाई !....'

'देखो, अब बिना कहे कहीं मत जाना...'

शमा दिखाई पड़ती है तो देखता हूँ कि चेहरा सूजा, आँखें नम—जैसे शुष्क रेगिस्तान में पानी के छोटे-छोटे श्रोत !

मैं फिर से अपना काम देखने लगा हूँ। दिन गुजरते जा रहे हैं। शमा जल रही है, मगर चुप है। जब से आया हूँ, एक शब्द भी मुझसे नहीं बोली है। रात में दूध का गिलास अब भी दे जाती है।

दो महीने बीत चुके हैं। शमा की दशा देखकर आज मुझे आँसू आ रहे हैं। दिन तड़प रहा है। दूध देकर जाते वक्त वह एक कागज मेरी गोद में फेंक गई है। मैं पुकारता ही रह गया हूँ—'शमा ! सुनो तो—यह कैसा कागज है ?....'

उसने सुनी है मेरी पुकार, फिर भी चली गई है। मैं उस कागज को उठाकर पढ़ने लगता हूँ—

मेरे दिल !

इतने जालिम न बनो, हमारा दिल बेहद मासूम है। वह सब-कुछ बरदाश्त कर सकता है, मगर तुम्हारा दिया हुआ दर्द उसके लिए नाकाबिलेबरदाश्त है। तुम नादान हो, दूसरों को रुलाना ही सीखा है तुमने, कितनों को तड़पाते रहे अब तक—खुदा ही जाने। मगर हमारे

पर तो तरस खाओ सितमगर ! हमारी जान लेकर क्या करोगे तुम ?

मेरे दिलवर ! एक बार तो दिल के अरमान पूरे कर दो। कह दो—'हम हैं तुम्हारे, तुम हो हमारे...' बस ! हमें जन्नत हासिल हो जायगी, हमें कारूँ का खजाना मिल जायगा।

बरबाद हो गये हम भोले राजा !

तेरी गली में आकर हम लुट गये सितमगर,
हँस-हँस के ले लिया दिल, सदके तेरी हँसी के।

देखो हम आखिरी बार कहते हैं—जबाब देना बहुत जल्द !

बेदर्द, बेमुरौव्वत, बेवफा—
मैं हूँ तुम्हारी ही—
शमा।

रात भर तक मैं ठीक से सो नहीं सका हूँ और सबेरे ही शमा आ पहुचती है कमरे में। और दिन तो चाय के वक्त ही उसे देखता था, परन्तु आज इस समय शायद वह अपने पत्र का उत्तर लेने आई है। चेहरा गम्भोर है और उस गम्भीरता के अन्दर का वैकल्य मैं स्पष्ट देख रहा हूँ।

बोला हूँ मैं—'प्यारी शमा ! तुम्हें कितनी गलतफहमी हो गई है, यह मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? मैं शादीशुदा हूँ। मेरी बीवी है और पाँच बच्चे। घर से रूठकर तुम्हारे यहाँ आ पड़ा हूँ...और तुम हो कि मेरी परवरिश करने के बदले मेरा दिल चाहती हो। मुझे तुम्हारे जजबात से हमदर्दी है...मगर मैं बेबस हूँ शमा ! तुम मेरा प्यार पा सकती हो, मेरी बहन बनकर....इसके अलावा मैं तुमको और कुछ नहीं दे सकता ...'

मैं रुक गया हूँ, तो शमा की आँखें बरसाती नदी बन गई हैं। मैं धीरे-धीरे उसका सर सहलाने लगता हूँ। उसे सान्त्वना मिलती है। धीरे से वह कहने लगती हैं—'तुम्हारी बीवी हैं, बच्चे हैं, फिर भी तुम यहाँ बेफिक्र होकर पड़े हो—कितनी ताज्जुब की बात है ?...अब तुम सँभल गये हो। तुम्हें किसी बात की कमी नहीं रही। तुम घर

आकर उन बेचारों को यहाँ लाओ। रुठने की अदा औरतों को ही अच्छी लगती है। मरद जब रुठते हैं तो घर बरबाद हो जाता है...'

शमा की बातें सुनकर मैं चिन्ता में पड़ गया हूँ।

'देखो....' शमा जाते हुए बोली है–'आज शाम को ही तुम्हें अपने घर जाना पड़ेगा और उन्हें लेकर फौरन वापस चले आना होगा....'

वह चली गई है। मैंने निश्चय कर लिया है कि देवीजी को यहाँ बुलाऊँगा जरूर! रामू काका को लिख दूँगा कि वे सबको यहाँ पहुँचा जायँ।

रामू काका को मैंने पत्र लिख दिया है। गाँव में रामू काका ही मेरे सबसे बड़े हितचिन्तक हैं इस बात का अब तक जिक्र नहीं किया इसका दुख है मुझे।

चार दिन बाद मुझे रामू काका का यह पत्र मिला है—

तुम्हें दुख होगा कि मैं बहू और बच्चों को साथ लाने के बदले यह पत्र भेज रहा हूँ। क्या करूँ, ईश्वर की मर्जी! साथ में बहू का पत्र है पढ़ लेना, सब जान जाओगे। मैं तीर्थ करने चला गया था, जब लौटा तो स्थिति हमारे वश की नही रह गई थी। बहू से मिलना चाहो तो आत्महत्या करके उससे जा मिलो। तुफ् है तुम्हारी निष्ठुरता पर।

यह छोटा-सा पत्र मेरे काँपते हाथों से छूटकर जमीन पर गिर पड़ता है। दूसरा पत्र उठाता हूँ। देवीजी की लिखावट है। मेरे सीने के भीतर आँधियाँ चल रही हैं। मस्तिष्क अगम पीड़ा से भर उठा है। फिर भी पढ़ने लगता हूँ—

रूठने वाले!

तुम चले गये मुझे अकेली छोड़कर। मैं नारी थी, असहाय थी–अतः तुम समझते थे कि मुझे झुका दोगे। आज मैं जल रही हूँ, हृदय में यह आकांक्षा लेकर कि दूसरे जन्म में तुम नारी बनो और मैं पुरुष और तब तुम देखो कि नारी पति के रूठने पर वह किस तरह से अपने प्राण देती है तड़प-तड़प कर।

मुझे खुशी है कि मरते समय भी मेरा सर ऊँचा है, मैं झुकी

नहीं। अपना सब कुछ लुटाकर भी मैंने तुम्हें कभी नहीं पुकारा। इस समय रामू काका सामने बैठे हैं और यह पत्र मैं उन्हें ही सौंप जाती हूँ कि दस-बीस साल में जब कभी तुम मेरी खोज में आओ, तो इसे पढ़कर जलो-तड़पो।

हरीप्रसाद के विषय में तुम्हारी धारणा ठीक थी। वह साँप था और उसने मुझे एक रात को डँस ही लिया—जबरदस्ती। मैं नारी थी, पति द्वारा ठुकराई हुई असहाय—क्या करती? सब कुछ लुटाकर भी मौन रही। वश चलता तो हरीप्रसाद को कच्चा ही चबा जाती, वश नहीं चला तो केवल आँसू बहाकर बैठ रही।

अगर तुम मेरे पास होते तो उसकी हिम्मत मुझे डँसने की कभी न पड़ती। नारी के लिए पुरुष ढाल है, सहारा है। तुम्हारे जाने के चार दिन के बाद ही बड़ा लड़का त्रिलोक भाग गया, पता नहीं कहाँ? मैं रोई नहीं—जब पति ही भाग गया तो बेटे कब तक साथ देंगे?

घास की रोटी बनाकर बच्चों को खिलाना चाहा, परन्तु तुम्हारे बच्चे कम हठी नहीं निकले। वे भूख से रोते-चिल्लाते रहे, परन्तु घास की रोटी मुँह में नहीं रखा। सात दिन के अन्दर तीन ने भूख की आग में अपनी जानें झोंक दी। लाश को ले जाकर मैंने रात के अंधेरे में टीले के पास फेंक दिया। भूखे बच्चों की लाशें गीदड़ों की दावत बन गईं।

छोटे बच्चे का मरना मुझसे न देखा गया। माता का हृदय ही तो—कब तक धीरज रखती? मैंने तुम्हारी छुरी से अपनी जाँघ का थोड़ा-सा माँस निकाला और उसे भूनकर बच्चे के मुख में रख दिया। शैतान बच्चा! भला माँ का दूध पीनेवाला बेटा उसका माँस कैसे खाता?

उसने भी आँखें मूँद ली। उस दिन मैं खूब रोई। दुनिया में अकेली रह गई थी। जीने की चाह मर चुकी थी।

आज मृत्यु की अन्तिम घड़ी आ पहुँची है। जीते-जीते थक भी गई

है—अब मर कर विश्राम लेना चाहती हूँ। रामू काका आज ही तीर्थ से लौटे हैं। बड़े ही कष्ट से यह पत्र लिखकर इन्हें दे रही हूँ। जब कभी यह पत्र तुम्हें मिले तो इतने दिनों के साथ के नाते, दो बूंद आंसू बहा लेना। और क्या लिखूं?

मुझे पकड़ो?...कोई मुझे पकड़ो... मैं पागल होता जा रहा हूँ...यह क्या हो गया?...मेरी दुनिया उजड़ गई—मैं बरबाद हो गया....सुनो!

मैंने अपने कपड़े चीर दिये हैं। सर के बाल नोचने लगा हूँ।

'क्या हुआ?....' शमा की आवाज है।

'यह क्या कर रहे हो तुम?' अजीज भाई हैं।

और यह मैं हूँ—'मुझे मत छुओ। मैं पागल हूँ...मैं बरबाद हो गया हूँ....मेरी दुनिया उजड़ गई है....'

सबको धक्का देकर मैं मकान से बाहर आ गया हूँ। तन-बदन की सुध नहीं है। भागा जा रहा हूँ—दौड़ा जा रहा हूँ।

एकाएक पपिहरा की हस्तलिपि का ध्यान आता है, मैं पुनः लौटता हूँ। मकान के अन्दर घुसकर हस्तलिपि उठा लेता हूँ।

फिर दौड़ने लगता हूँ बेतहाशा। पैरों में तूफान मचल उठा है। दौड़ते धूपते, हांफते-कांपते, गिरते-पड़ते पहुँच गया हूँ अपने गांव। इमली के पेड़ के नीचे खड़ा होकर देख रहा हूँ ठीक सामने....

बरसाती बूंदों की चोट खाकर टूटा-फूटा घर मिट्टी का ढूहा बन गया है। रामू काका मिलते हैं। आंखों में आंसू और गले में हिचकियाँ भर कर मुझे कलेजे से लगा लेते हैं।

मैं पूछता हूँ—'इस घर को उजड़े कितने दिन हुए काका?'

'दस महीने....'

जवाब सुनता हूँ मैं, फिर काका के कलेजे से अपना शरीर छुड़ा कर भाग निकलता हूँ! मैं सचमुच पागल बन गया हूँ। मस्तिष्क ठिकाने नहीं है तो क्या करूं?

● ●

बम्बई ! धन, सौन्दर्य एवं वैभव की क्रीड़ास्थली ! कैलाश भी आजकल बम्बई में ही है। वह कैलाश पिक्चर्स लिमिटेड का मैनेजिंग डायरेक्टर है। फिल्मी दुनिया के पुराने सेठ कैलाश की प्रतिभा के कायल हो गये हैं। आज कैलाश का नाम सभी फिल्मवाले इज्जत के साथ लेते हैं। कैलाश प्रसन्न है, व्यस्त है। उसे दम मारने की भी फुर्सत नहीं। उसे गर्व है कि वह देश को ऐसी फिल्में भेंट कर रहा है, जिससे राष्ट्र का उत्थान होगा।

कैलाश अपने आफिस में उपस्थित है। अभी-अभी वह अपने बंगले से आकर कुर्सी पर बैठा है। तभी दरबान ने प्रवेश करके सलाम ठोंका है।

'हजूर !...दो भिखमंगे आये हैं....टलते ही नहीं....'

'उन्हें ले जाकर यह दे दो....' कैलाश ने एक रुपया निकाल कर दरबान के आगे रख दिया।

'सरकार वे दोनों आपसे मिलना चाहते हैं...'

'मुझसे मिलना चाहते हैं ?....' कैलाश को आश्चर्य हुआ—'क्यों ? कुछ काम बताया उन्होंने ?'

'नहीं हजूर ! सिर्फ नाम बताया है....एक का नाम खलील है और दूसरी एक नौजवान लड़की है....' बोला दरबान।

खलील का नाम सुनकर कैलाश को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। दरबान को आज्ञा दी—'उन्हें जल्द यहाँ भेजो....'

थोड़ी देर बाद खलील और पपिहरा ने वहाँ प्रवेश किया। दोनों की दशा दयनीय थी। कैलाश को देखकर दोनों बड़े ही प्रसन्न हुए।

'यहाँ कैसे आ गया खलील ?....' कैलाश ने पूछा—'तुम दोनों तो गाँव से भाग गये थे न ?'

'तुम्हें खोज ही लेंगे कहीं न कहीं छोटे सरकार !....' खलील हँसकर बोला—'और हमलोग तो गाँव से दीपक साईं की खोज में

चले आये थे....उनके घर गये तो मालूम हुआ कि वे बम्बई में डाक्टरी पढ़ रहे हैं। उनके नौकर इतने बदतमीज कि पता भी नहीं बताया और गर्दन में धक्के मारने लगे। लाचार होकर हमने सोचा कि बम्बई ही चलकर उनका पता लगावें। मगर खुदा के फजल से बम्बई तो इतनी छोटी है कि खाक पता लगे समुन्दर में एक छोटी-सी मोती का, सो आज कई महीनों से यहाँ पड़े हैं। भीख का सहारा है और इरादा है कि दीपक को खोजे बगैर बम्बई छोड़ेंगे भी नहीं। यह भी क्या समझेगी कि कोई खाक छानने आया था यहाँ...तुम्हें तो दीपक की खबर होगी छोटे भैया!'

'पूछो मत...' कैलाश ने कहा—'यह फिलम कम्पनी खोली मैंने और यहाँ आकर इतना व्यस्त हो गया हूँ कि घर पर एक पत्र भी नहीं लिख सका....खैर! अब तुम लोग मेरे साथ ही रहो। कभी न कभी दीपक का पता लग ही जायगा। हाँ, यह तो बताओ, तुम लोग यहाँ तक आये कैसे?'

'अल्लाह की मिहरबानी से मेरी नजरेइनायत तुम्हारी मोटर पर पड़ गई छोटे भैया! और दौड़ते-दौड़ते हम तुम्हारे पीछे यहाँ तक आ पहुँचे। खुदा के फजल से तुम्हारा दरबान भी एकदम डाकू है छोटे सरकार! पहले तो आँखें दिखाई, लट्ठ निकाला मगर जब हमने कहा कि हम उनके गाँव के आदमी हैं तो बोला कि पाँच रुपया दो तो सेठ साहब को खबर करेंगे। भीख माँगकर जो रुपये इकट्ठे किये थे, सब कम्बख्त ने ले लिया। जब तुम्हारा दरबान इतना घूस खाता है, तो तुम भी खाना बहुत कम ही खाते होंगे कैलाश भैया? घूस से ही तुम्हारा पेट भर जाता होगा!....'

कैलाश ने घण्टी बजाई। दरबान हाजिर हुआ। बोला कैलाश-'तुमने खलील से रुपये लिया है?'

'अजी, रुपये तो इसकी जेब में ही होंगे....' कहकर खलील आगे बढ़ा और दरबान की जेब में जो भी था, सब निकाल लिया। दिया

था तो केवल पाँच और निकाला पन्द्रह। बोला—'जाने दो इसे छोटे सरकार! बड़े आदमी की नौकरी करके यह भी बड़ा आदमी बनना चाहता है....'

'देखो!....' कैलाश ने दरबान को आज्ञा दी—'इन दोनों को ले जाकर बँगले पर आराम से रखो....इनके खाने-पीने-पहनने का प्रबन्ध कर दो...'

खलील और पपिहरा कैलाश के बँगले पर रहने लगे। खलील मस्त था और पपिहरा खुश। खलील खाता-पीता सोता था और पपिहरा सोचती थी कि वह आराम से बम्बई में कैलाश के साथ पड़ी है तो कभी-न-कभी दीपक का पता लगेगा ही।

पपिहरा का मुर्झाया चेहरा खिलने लगा। वह गाने गाती, रेडियो सुनती और तितली-सी उड़ती फिरती। शहर का आकर्षण उसके लिए आनन्ददायक था।

कैलाश जब कभी पपिहरा का गाना सुनता तो वह सोच में पड़ जाता। सोचने लगता कि यदि पपिहरा भी अभिनेत्री बन जाती तो उसके गले की आवाज संगीत-प्रेमियों के हृदय में तूफान उठा देती। मगर पपिहरा अशिक्षित थी और उसकी अशिक्षा ही उसे अभिनेत्री बनाने में बाधक थी।

कैलाश हार मानने वाला आदमी न था। उसने पपिहरा को अभिनेत्री बनाने का निश्चय कर लिया और उसे पढ़ाने के लिए एक अध्यापिका रख दी।

पहले तो पपिहरा पढ़ने पर राजी नहीं हुई, मगर जब कैलाश ने उसे बहुत समझाया और कहा कि पढ़-लिखकर वह दीपक के योग्य बन जायगी तो तैयार हो गई।

और साल भर बाद ही जब वह 'हायरे जमाना' नामक फिल्म में नायिका के रूप में अवतरित हुई तो लोग वाह-वाह कर उठे। उसके अभिनय ने लोगों को मुग्ध कर लिया। उसकी मुस्कुराहट

देखकर लोग हँसे, उसके आँसू देखकर रोये, उसके गाने सुनकर लोग गुनगुनाये, उसका नृत्य देखकर कलेजा पकड़ बैठे।

पपिहरा तूफान बनकर सिनेमा-संसार में उतरी। कैलाश के पटु-प्रचार ने उसके नाम में बिजली भर दी। देश के बच्चे-बच्चे तक उसके गाने-गाने लगे।

रतन फिल्म के मालिक सेठ रतनलाल ने भी वह फिल्म देखी। पपिहरा की हर अदा ने उनको मोह लिया। सेठ रतनलाल के चित्र इधर दो-तीन वर्षों से लगातार नीचे गिरते जा रहे थे। उनको इधर काफी हानि उठानी पड़ी थी।

वे सोचने लगे कि अगर यह अभिनेत्री उनके एक चित्र में उतर जाय तो उनका सारा घाटा पूरा हो जाय और उनकी कम्पनी की धाक भी बंध जाय।

दूसरे ही दिन। सेठ रतनलाल की कार कैलाश पिक्चर्स लिमिटेड के स्टूडियो के सामने खड़ी थी।

कैलाश ने सेठ रतनलाल को देखकर अभिवादन किया और उन्हें कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। बोला—'बहुत दिनों के बाद आपका दर्शन हुआ सेठजी!'

'क्या करूँ साहब! आने का इरादा तो नहीं था, परन्तु आपकी मिस पपिहरा का अभिनय मुझे यहाँ तक खींच लाया—अभिनेत्री तो आपने ऐसी पेश की कि लोग अवाक् हो गये हैं....'

'वह मेरे ही गाँव की एक अपढ़ छोकरी थी। यहाँ आ गई तो मैंने उसे पढ़ा-लिखाकर ठीक कर लिया। लड़कपन से ही उसके गले में जादू था सेठजी!' बोला कैलाश।

'आप भी किसी जादूगर से कम नहीं है कैलाशजी? कूड़े के ढेर में से हीरे को खोज निकालना आसान काम नहीं....' सेठ रतन-लाल ने कहा—'मैं भी एक आवश्यक कार्य से आपके पास उपस्थित हुआ हूँ। आप तो जानते ही हैं कि हमारे चित्र इधर फेल करते जा

रहे हैं ! अगर आप एक चित्र के लिए मेरा कण्ट्रेक्ट मिस पपिहरा से करा दें तो बड़ी कृपा हो।'

'मुझे कोई एतराज नहीं सेठ साहब !' कैलाश बोला—'मगर पपिहरा की स्वीकृति इस विषय में आवश्यक है...'

'जरूर ! जरूर !....आप उनसे पूछ लीजिये। आप जो भी कहेंगे मैं देने को तैयार हूं। अपनी चेकबुक मैं साथ लेता आया हूं...'

'तो मैं उसे अभी बुलाकर पूछता हूं...' कहकर कैलाश ने घण्टी बजाई। दरबान हाजिर हुआ।

हुक्म मिला—'पपिहरा को भेजो !...'

हुक्म की तामील हुई और—'मुझे क्यों बुलाया छोटे भैया ?'—पपिहरा आकर कोकिल स्वर में कूक उठी।

'इधर आ, बैठ !'—कैलाश ने कहा और पपिहरा बैठ गई।

'इन्हें तू जानती है पपिहरा ?....' कैलाश ने पूछा।

'नहीं तो छोटे भैया ! इनको कभी नहीं देखा मैंने....' पपिहरा ने उड़ती नजर सेठ साहब पर डालते हुए कहा।

'ये हैं रतन फिल्म्स के मालिक सेठ रतनलाल....' बोला कैलाश।

सुनकर पपिहरा सोचने लगी कि यह नाम उसने कभी सुना अवश्य है, परन्तु कब यह उसे याद नहीं। अतः उसने केवल शिष्टाचार के नाते दोनों हाथ जोड़ दिए।

सेठ साहब ने भी नमस्ते किया, कुछ मुस्कुराकर, कुछ दाहिनी आंख दबाकर और कुछ बायां कन्धा हिलाकर ?

'तू इनकी एक फिल्म में काम करेगी !...'

'इसे तुम जानो छोटे भैया !'—पपिहरा बोली—'जो कहो, मैं करने को तैयार हूं...'

'लीजिए कैलाश जी !'—सेठ रतनलाल बोले—'मिस पपिहरा की स्वीकृति मिल गई। अब केवल आप के कहने की देर है....'

'मैं भी स्वीकृति देता हूं...'

'तो कितना ?—' अपनी चेकबुक निकालकर सेठजी ने पूछा।

'मेरे विचार से तीस हजार कुछ अधिक न होगा...' कैलाश ने कहा।

'मैं यहाँ मोल-भाव करने नहीं आया कैलाशजी ! यह लीजिये...' सेठ रतनलाल ने तीस हजार का चेक कैलाश के आगे रख दिया।

'तो आपका काम कब से शुरू होगा ?'—पूछा कैलाश ने।

'स्टोरी तो एकदम तैयार है—जल्द से जल्द प्रारम्भ कर दूँगा ? कल मिस पपिहरा को ले जाकर अपना स्टूडियो दिखाऊँगा और अपने स्टाफ से परिचित कराऊँगा। फिर किसी अच्छे दिन चित्र का मुहूर्त भी कर दूँगा...आपको जरा भी कष्ट नहीं होगा मिस पपिहरा ! शूटिंग के दिन मेरी कार आपको ले आया करेगी और आपके घर पहुँचा देगी....'

'धन्यवाद सेठ साहब !...' पपिहरा बोली।

'कैलाश जी ? मैं आपका कृतज्ञ हूँ जो आपने मुझ पर इतनी दया की....' कहकर सेठजी उठ खड़े हुए—'तो मिस पपिहरा ! कल शाम को चार बजे आप तैयार रहें। मैं स्वयं आपको लेने आऊँगा....'

सेठजी चले गये तो पपिहरा बोली—'मैं तुम्हारी ही फिल्मों में काम करती तो अच्छा था छोटे भैया !'

'बेवकूफ कहीं की—' कैलाश ने मधुर झिड़की दी—'जितने ही जगह तू काम करेगी, उतनी ही तेरी ख्याति बढ़ेगी। आजकल एक फिल्म के तीस हजार किसको मिल रहे हैं। पुरानी अभिनेत्रियाँ तेरे आगे झख मारें।'

उसी दिन शाम को—कैलाश, पपिहरा और खलील तीनों चाय पी रहे थे। बीच-बीच में बातें भी होती जा रही थीं।

खलील बोला—'छोटे भैया ! अब मैं घर जाना चाहता हूँ।'

'और यहाँ क्या आसमान के नीचे पड़ा है, जो घर की याद

सता रही है ?'—कैलाश ने कहा।

'खुदा कसम छोटे भैया ! आसमान के नीचे पड़ा होता तो गनीमत थी। इस कैदखाने में मेरी तबीयत जरा भी नहीं लगती... तुमने इस टिटिहिरी को पढ़ा-लिखाकर आसमान पर पहुँचा दिया कि यह शैतान अब जमीन की ओर देखती भी नहीं...मगर मैं तो जहाँ का वहीं हो रह गया। न हँसना सीखा, न रोना—यह पिपिहिरी तो बेवक्त रोने-हँसने लगती है। खुदा के फजल से यह ड्रामा भी अजीब चीज है छोटे भैया !....मगर मैं अब यहाँ रुक नहीं सकता। अब्बा की याद मुझे आ रही है। वे जाने किस हालत में होंगे...'

'इसे जाने दो छोटे भैया ! क्या करेगा यह यहाँ रहकर ?—' पपिहरा ने कहा।

कैलाश ने सेफ से एक हजार नोट के निकालकर खलील के सामने रख दिया—'ले, जब जाना ही चाहता है तो चला जा...'

'अरे बाप रे !' आश्चर्य से बोला खलील—'खुदा कसम ! तुम तो अल्लाहताला से भी बढ़कर दान करते हो छोटे भैया ! इतने सालों तक अजान के वक्त मैं उठा-बैठा, मगर खुदा ने कभी एक मुर्गी भी मुफ्त में नहीं दी....और तुमने तो इकट्ठे ही एक हजार दे डाला...या खुदा ! तू भी फजूलखर्चों को ही दौलत देता है....'

दूसरे दिन प्रातःकाल खलील ने प्रस्थान कर दिया।

चलते समय पपिहरा ने कहा—'घर जाकर जरा रसूल भैया से मिल लेना खलील ! और उनसे कह देना कि मैं अच्छी तरह हूँ... 'और जरा उसकी भी खबर लेते रहना ! जिसे रसूल भैया को सौंप आये थे....'

'ओह ! समझ गया....'

खलील चला गया। पपिहरा कुछ दुखी अवश्य हुई, परन्तु अब वह गाँव की याद करना नहीं चाहती थी।

शाम को सेठ रतनलाल स्वयं आकर पपिहरा को कार पर अपने स्टूडियों में ले गये ! स्टूडियो के फाटक पर कार रुकी, तो पपिहरा

की दृष्टि फाटक पर खड़े हुए लम्बे-काले भीमकाय दरबान पर पड़ी। उसका सारा बदन सिहर उठा। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं, फिर खोलकर दरबान की ओर देखा।

दरबान भी अपनी जलती आँखों से पपिहरा की ओर देख रहा था। डील-डौल उसका बड़ा ही भयानक था। मुँह पर घनी काली दाढ़ी थी, जिससे उसकी भयानकता बढ़ गई थी।

सेठजी ने उसे अपना स्टूडियो दिखलाया, अपने कर्मचारियों से परिचय कराया। अनमनस्क-सी पपिहरा सब कुछ देख रही थी। कभी-कभी मुख से दो-चार शब्द अनजाने में बोल देती थी।

जब उसे कार पर चढ़ाकर सेठजी पहुँचाने चले, तो रास्ते में पपिहरा ने कहा—'सेठजी !....'

'कहिए !....' सेठजी आज्ञाकारी सेवक की तरह बोले।

'आपका यह दरबान आपके पास कब से है ?....'

'अभी तो नया ही आया है....' सेठजी ने कहा—'यही चार-छः महीने हुए....'

'क्या नाम है इसका ?....' पपिहरा ने पूछा।

'हमें नाम से क्या मतलब ?' हमलोग, उसे दरबान ही कहकर पुकारते हैं...मगर आप उसके विषय में इतना क्यों पूछ रही हैं ?'

'कुछ नहीं...' बोली पपिहरा—'यों ही पूछ रही थी। सूरत उसकी बड़ी खौफनाक है....'

'तभी तो उसे रख लिया है" सेठजी ने कहा—'आदमी तगड़ा और ईमानदार है। लड़ाई-झगड़े के वक्त कभी काम दे ही जायगा....'

इसके बाद सेठ रतनलाल की फिल्म का कार्य प्रारम्भ हो गया। पपिहरा के लिए सेठजी रोज अपनी कार भेज देते थे। पपिहरा जब भी आते-जाते फाटक पर पहुँचती, तो उसकी दृष्टि दरबान पर जा पड़ती और दरबान को अपनी ओर घूरता पाकर उसका हृदय तीव्र वेग से धड़कने लगता।

पपिहरा परेशान थी, पता नहीं क्यों, फिर भी उसे रतन

स्टूडियो रोज आना ही पड़ता था। सेठ रतनलाल पपिहरा पर दिन प्रति-दिन अधिकाधिक सदय होते जा रहे थे। वे हमेशा पपिहरा के साथ छाया की भाँति लगे रहते थे।

उस दिन सेठजी और पपिहरा आफिस में बैठे थे।

'मिस पपिहरा !...'

'कहिए....'

'आप के गले में तो जादू है ही, आपकी पर्सनालिटी में भी कम जादू नहीं...एक नजर जिसे देख लें, वह जीता हुआ भी मुर्दा बना रहे...' बोले सेठजी।

'शुक्रिया !....' पपिहरा ने केवल इतना कहा।

'देखिए !...' सेठजी ने जेब से एक डिब्बा निकालते हुए कहा—'आज सुबह ही यह हार आपके लिए खरीदा है ?....'

'आपने इतनी तकलीफ क्यों की सेठजी ?'

'यह तो अपनी दिलबस्तगी है मिस पपिहरा ! वर्ना मैं हूँ किस काबिल ?....' कहकर सेठजी ने वह मूल्यवान हार अपने हाथों पपिहरा के गले में डाल दिया।

पपिहरा का सौन्दर्य और खिल उठा। सेठजी मुग्ध-दृष्टि से वह अनुपम छवि देखते ही रह गये।

'आप मेरी तरफ इस तरह क्या देख रहे हैं सेठजी ?'

'देख रहा हूँ कि गुलाब का फूल तो खिल गया, परन्तु किसी माली की नजर अब तक इस पर क्यों नहीं पड़ी !...सच कहता हूँ मिस पपिहरा। आपका सौन्दर्य इतना मादक है कि पीते-पीते मैं बेहोश-सा हो जाता हूँ और चाहता हूँ कि योंही आपको हमेशा अपने सामने बिठाकर देखा करूँ !....आपको मेरी बातें अप्रिय तो नहीं लग रही है मिस पपिहरा !...'

'जी नहीं...कहते चलिए....' पपिहरा भी अभिनेत्रियों के हथकण्डे सीख रही थी।

'क्या कहूँ मिस पपिहरा ! अपना दिल ,आपको कैसे दिखाऊँ ?

दिल तो हजार-हजार हड्डियों के भीतर छिपा रहता है न !...इस अवस्था में आपने मेरे जीवन में आग लगाई है, अब इसे कौन बुझाये....सैगल का वह गाना तो आपको याद है न 'कौन बुझाये तपन मेरे दिल की...' बस, बिल्कुल यही बात है मिस पपिहरा ! मैं परेशान हूँ। आपको जब देखता हूँ तो तबीयत हरी हो जाती है। जब नहीं देखता, तो मुर्दा बना रहता हूँ।'

इतने में ही पपिहरा की दृष्टि दरवाजे पर पड़ी। वह बोली—'सेठजी ! बाहर कोई आदमी खड़ा हुआ हमारी बातें सुन रहा है....'

'कौन है ?' सेठजी गरज कर दरवाजे की ओर बढ़े।

दरवाजे के बाहर दैत्याकार दरबान खड़ा था। सेठजी क्रोध से कांप उठे—'क्या है ? पुकारा क्यों नहीं—यहाँ खड़ा होकर क्या कर रहा था ? उल्लू का पट्ठा कहीं का...' सेठजी ने एक तमाचा जड़ दिया—'ऐसी गुस्ताखी अब की तो बरखास्त कर दूँगा...'

तमाचा खाकर लम्बे-चौड़े दरबान के हाथ कांपे, फिर वह सँभल कर घूम पड़ा और चला गया। सेठजी अन्दर आये तो पपिहरा उठ खड़ी हुई। कुछ बेचैन-सी लग रही थी वह। बोली—'चल रही हूँ सेठजी ! कुछ जरूरी काम है...'

और चिड़िया उस दिन सेठजी के जाल में फंसते-फँसते उड़ गई। सेठजी को बड़ा दुख हुआ। मगर जब जाल तना है, तो चिड़िया कब तक भागती रहेगी ? सो एक दिन चिड़िया अनायास ही आ फँसी। सेठजी रविवार की शाम को मदिरा से मस्त सोफे पर बैठे हुए सिगार पी रहे थे। पपिहरा यों ही चली आई उनसे मिलने।

पपिहरा को अपनी विपत्ति का ज्ञान तब हुआ, जब सेठजी ने उसकी कलाई पकड़ कर उसे अपने पास खींच लिया और सोफे पर बैठाते हुए बोले—'पपिहरा रानी ! बहुत तड़प चुका हूँ। आज प्यासे की प्यास बुझानी ही पड़ेगी तुम्हें। चाहे जो,कुछ हो, मैं आज निराश नहीं हो सकूँगा...'

पपिहरा समझ गई कि सेठजी ने आज शैतान की सवारी कर

ली है। वह भयभीत हो उठी। उसने उठकर जाना चाहा तो सेठजी ने उसके शरीर को अपने बाहों में बाँध लिया।

'छोड़ दो मुझे....' पपिहरा क्रोध से बोली—'तीस हजार और एक हार देकर तुम मुझे खरीदना चाहते हो?....'

'मेरी क्या हस्ती जो तुम्हें खरीद सकूँ....मगर आज तुम्हें मैं यों ही जाने नहीं दूँगा....समझी तुम!...'

'मैं समझ गई....' पपिहरा ने कहा—'मगर यह याद रखो कि अगर तुमने मेरे साथ जरा भी ज्यादती की तो कैलाश भैया से कह दूँगी...'

'मुझे डराओ मत! सेठ रतनलाल के पास इतनी दौलत है, जिससे गवर्नर तक खरीदे जा सकते हैं....पाप को मैं पुण्य में बदल दे सकता हूँ....'

सेठ रतनलाल ने पपिहरा को इस तरह आबद्ध कर लिया कि वह चीख पड़ी। अनायास ही उसके मुख से निकल पड़ा—'रसूल भैया मुझे बचाओ!....'

'छोड़ दो उसे!....' किसी ने कड़ककर कहा।

सेठजी ने देखा, उनका लम्बा-तगड़ा दरबान तनकर पहाड़-सा खड़ा था उनके सामने।

'क्या है?...तू क्यों यहाँ आया?....' सेठजी नशे में बड़बड़ाये।

दराबन ने सेठजी का गला पकड़कर उन्हें उठा लिया और तेजी से फर्स पर ढकेल दिया। सेठजी के सर से खून बहने लगा। वे 'चोर-डाकू' चिल्लाते हुए बाहर भागे।

दरबान ने पपिहरा की ओर देखा, धीरे से पुकारा—'पपिहा!...'

'भैया!....रसूल भैया!....' दौड़कर पपिहरा रसूल के गले से जा लिपटी।

'शैतान कहीं की...' रसूल उसके सर पर हाथ फेरता हुआ

बोला—'मुझे छोड़कर भाग आई थी। देख तो, तेरी खोज में मैं कैसा बदल गया हूँ ! तू मुझे पहचान भी न सकी....'

'मुझे कुछ शक जरूर हुआ था रसूल भैया !....मगर तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?'

'अपना बदला लेने...'

तभी सेठ रतनलाल कई पुलिसवालों के साथ आ धमके। थाना बगल में ही था।

'यही है....' सेठ रतनलाल चिल्लाये, रसूल की ओर इशारा करके।

और रसूल के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं।

पपिहरा चीख कर बोली—'इन्हें न पकड़ो...यह मेरे भाई हैं....'

'तू चुप रह पपिहा !' रसूल गम्भीर स्वर में बोला—'जो कुछ हो रहा है, होने दे। खुदा की मर्जी !...'

सेठ रतनलाल फिर चिल्लाये—'यह चोर है....डाकू है....नीच है....पापी है। इसे ले जाकर कैदखाने में डाल दो...'

रसूल भयानक गति से हँसकर बोला—'सेठ रतनलाल, चोर तुम हो, जिसने अपने नौकर की बीवी की अस्मत चुराई थी आज से अठारह साल पहले....डाकू तो तुम हो, जो अकेले कमरे में औरतों की लाज लूटते हो....नीच और पापी तो तुम हो, जो अपनी बेटी को भी अपनी गोद का खिलौना बनाना चाहते हो....मुझे भूल गये... मैं वही रसूल हूँ, जिसके दिल में आज भी बदले की आग जल रही है....और यह पपिहा कौन है, जानते हो ?....यह है तुम्हारी बेटी ! शर्म करो इन्सानी शैतान !...तुम मुझे जलील कहते हो....' रसूल कहता गया—'तुम्हारी बेटी को अपनी बहन समझकर मैंने पाला-पोसा और तुम उसी पर कहर ढाने की हिमाकत करने लगे...हममें से कौन ज्यादा जलील है, इसे खुदा जानता है....'

पुलिसवाले रसूल को घसीट ले चले। पपिहरा हतबुद्धि-सी खड़ी देखती रही। रसूल को जाते देखकर वह रोना चाहती थी और अपने

खोए हुए पिता को पाकर हंसना, और रोने-हंसने के आवेग ने विचित्र मौन की सृष्टि कर दी थी।

आज तक वह यही समझती आ रही थी कि संसार में उसका कोई है ही नहीं। अगर कोई है भी, तो वह उससे कभी मिल नहीं सकती। परन्तु आज एक विचित्र स्थिति में अपने पिता को पहचानकर वह अत्यन्त विस्मित हो उठी थी।

और उसके पिता, सेठ रतनलाल सर नीचा किए हुए सोफे पर बैठे हांफ रहे थे। वे सर उठाकर नहीं देख सकते थे। पपिहरा को वे अब कौन-सा मुंह दिखायेंगे।

'प्रतिमा !...' धीरे से सर उठाकर पुकारा सेठजी ने।

और पपिहरा इधर-उधर सर घुमाकर देखने लगी कि सेठजी किसे पुकार रहे हैं।

'मैं तुझे ही पुकार रहा हूं !...तुम्हारा नाम प्रतिमा ही रखा था मैंने... इधर आओ, मेरे पास !...' थोड़ी देर पहले के सेठजी का वासनालिप्त स्वर अब वात्सल्य से भर उठा था।

पपिहरा उनके पास चली आई। सेठजी की आंखों से आंसू बह चले। बोले—'मुझे क्षमा कर दो प्रतिमा बेटी !...मैं कितना नीच हूं....'

और थोड़ी ही देर में युगों के बिछुड़े हुए पिता-पुत्री आपस में हिल-मिल गये। उसी समय सेठजी ने अपनी कार निकाली और पपिहरा के साथ कैलाश के बंगले पर आये।

सेठजी ने लपककर कैलाश को गले लगा लिया। बोले—'अब यह पपिहरा आपके पास कभी नहीं आयेगी कैलाशजी !...मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूं कि आपके कारण मेरी खोई हुई बेटी मिल गई....'

'कैसी खोई हुई बेटी सेठजी !...'

'यह पपिहरा मेरी बेटी है....लड़कपन में ही रसूल इसे उठा ले गया था....' सेठजी ने कहा।

'हम तो इसे रसूल की सगी बहन ही समझते थे....' कैलाश

बोला—'क्या किस्सा है सुनाइये तो....'

सेठजी ने आरम्भ से अन्त तक सारी कहानी सुना दी, परन्तु अपना पाप छिपा ले गए। उस पाप की कहानी केवल सेठजी और रसूल जानते थे। सो रसूल तो जेल में था—और सेठजी ने कुछ इस तरह रसूल के विश्वासघात की कहानी कही कि पपिहरा और कैलाश दोनों का हृदय रसूल के प्रति अगम घृणा से भर उठा। इतने सालों से रसूल के साथ रहनेवाली पपिहरा भी उसका स्नेह भूल गई।

'चलिए अच्छा ही हुआ...' कैलाश बोला—'मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि आपकी बेटी आपको मिल गई और रसूल जैसा शैतान जेल की हवा खाने पर मजबूर हुआ। अब पपिहरा को अपने साथ आप रख सकते हैं। मैं तो गांव के नाते इसका भाई हूं, मगर आपकी तो यह बेटी ही है।'

पपिहरा सेठ रतनलाल के यहां आकर रहने लगी। वह प्रसन्न थी और सेठ रतनलाल भी कम खुश नहीं थे। सेठजी ने रसूल की लगातार बुराई करके पपिहरा के दिल में रसूल के प्रति और भी घृणा उत्पन्न कर दी थी। पपिहरा को कोई दुख नहीं था। वह सेठजी की बेटी थी। अभाव में लड़कपन गुजारने वाली पपिहरा धन का सम्पर्क पाकर सब कुछ भूल गई थी। फिर भी, रात में जब वह मुलायम बिस्तर पर सोती तो न जाने किस कोने से रसूल के लिए हृदय में करुण चीत्कार भर उठती थी।

रसूल पर मुकदमा चला। जुर्म संगीन था। उसने सेठ रतनलाल की बेटी का अपहरण किया था और सेठजी के कमरे में घुसकर उन्हें चोट पहुंचाई थी। उसे चार साल सख्त कैद की सजा मिली।

उस दिन शाम को जब सेठ रतनलाल ने हंसते-हंसते पपिहरा से रसूल की सजा का वर्णन किया तो सुनते-सुनते पपिहरा एकाएक बेहोश होकर गिर पड़ी। कैलाश भी उस समय वहां उपस्थित था। पपिहरा को बेहोश होते देखकर वह भी घबड़ा उठा।

बोला—'मैं इसके मुंह पर पानी के छींटे देता हूं। आप जल्द किसी डाक्टर को फोन कीजिये....'

'मैं अभी डाक्टर दीपक को बुलाता हूं—' दौड़ते हुए सेठजी दूसरे कमरे में चले गये।

थोड़ी ही देर बाद वे लौटे। कैलाश पपिहरा के मुंह पर छींटे दे रहा था। सेठजी को आया देखकर बोला—'ये डाक्टर दीपक कौन हैं सेठजी ?'

'यह एक नये डाक्टर हैं। अनुभव अच्छा है—' कहकर सेठजी पपिहरा को ध्यानपूर्वक देखने लगे।

थोड़ी ही देर बाद बाहर से कार का हार्न सुनाई पड़ा। सेठजी ने कहा—'डाक्टर साहब आ गए....'

डाक्टर की सूरत देखते ही कैलाश चिल्ला उठा—'अरे दीपक तुम ? बड़ा परेशान था तुम्हारे लिए...'

दोनों दोस्त गले मिले। दीपक बोला—'तुम यहां कैसे कैलाश ?'

'चलो पहले अपना रोगी देख लो, बाकी बातें बाद में होंगी।'

कमरे में घुसते ही डाक्टर दीपक की दृष्टि बेहोश पपिहरा पर पड़ी। वह इस तरह चौंक पड़ा जैसे कलेजे में कोई आलपीन चुभ गई हो। उसने मार्मिक दृष्टि से कैलाश की ओर देखा। बोला—'यह सब क्या है कैलाश ?'

कैलाश ने धीरे से उसके कान में कहा—'अभी चुप रहो तुम ! सेठजी पपिहरा के पिता हैं। तुम जल्द इसकी बेहोशी दूर करो।'

दीपक ने पपिहरा की आंखों की परीक्षा की और उसे एक इंजेक्शन दिया। पांच मिनट के बाद पपिहरा की आंखें इस तरह खुल गयीं, जैसे सबेरे की हवा खाकर गुलाब की पंखड़ियां करवट ले रही हों।

कुछ देर तक तो पपिहरा की आंखें खुलकर भी निश्चल रहीं, परन्तु जब उसने अपनी पुतलियां घुमाकर उपस्थित लोगों की ओर देखा और

उसकी नजर दीपक पर पड़ी तो आवेश एवं आश्चर्य में भरकर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। सोचने लगी, शायद वह सपना देख रही है। परन्तु जब उसने पुनः आँखें खोलीं तो उसे निश्चय हो गया कि वह स्वप्न संसार से बाहर वास्तविक जगत् में है।

'चलिये सेठजी !' कैलाश ने कहा—'आपसे एक बात कहनी है, जरा बाहर तो आइए....'

सेठजी और कैलाश बाहर चले गये।

दीपक और पपिहरा वहाँ अकेले रह गये। दोनों के नेत्र एक दूसरे की ओर एकटक देख रहे थे। पुतलियाँ निश्चल थीं, परन्तु हृदय तीव्र वेग से धड़क रहे थे।

'पपिहरा !....' धीरे से पुकारा दीपक ने और उसकी बगल में जा बैठा। उसका हाथ अपनी हथेलियों में लेकर सहलाने लगा।

'पपिहरा चुप रही। नेह लगाकर दिल तोड़ देनेवालों से कोई क्या बोले, क्या कहे, क्या शिकायत करे ?

'पपिहरा !...' दीपक ने फिर पुकारा—'बोलो कुछ...'

'तुम्हें मेरा नाम अब तक याद है ?....' पपिहरा बड़े कष्ट से बोली—'मैं तो समझती थी कि जिस तरह तुम मुझे भूल गये उसी तरह तुम्हें मेरा नाम भी याद न होगा...'

'मैं विवश था पपिहरा !' दीपक बोला—'तुम्हारे गाँव से लौट कर बम्बई पढ़ने चला आया....और अब तो यहीं डाक्टरी करने लगा हूँ....'

'इतने दिन का जमाना गुजरा, कभी याद भी आई थी हमारी ? कभी सोचा भी था कि मैंने तुम्हारे लिए कितनी तकलीफें सही हैं ? बेवफाई तो मरदों की सबसे बड़ी सिफत है...तुम भी बेवफा निकले तो इसमें ताज्जुब क्या ?....'

'मगर अब हम-तुम कभी अलग नहीं होंगे पपिहरा !....'

'ख्वाब की बातें मत करो दीपक बाबू। अब मैं खुदमुख्तार नहीं रही। मेरे पिताजी जो वाजिब समझेंगे करेंगे...'

'मैं उनकी आज्ञा ले आया हूँ....' कैलाश ने अन्दर आते हुए कहा—'मैंने उन्हें सभी बातें स्पष्ट बता दी है, वे तुम दोनों के विवाह के लिए सहमत हैं....'

सुनकर पपिहरा का चेहरा रक्ताभ हो उठा।

● ●

पागल हो गया था मैं, परन्तु दुःख के आवेग से पागल हुए व्यक्ति का मस्तिष्क कुछ दिनों या कुछ सालों में अपने आप ही ठीक हो जाता है। मेरा दिमाग भी अब ठीक है। पिछले जीवन की याद अब एक कहानी के रूप में ही सीमित है। एक जमाना गुजर गया—पूरे पन्द्रह साल।

और आज मैं भिखारी हूँ। पिछले दस सालों से भीख ही माँग रहा हूँ। पेट भिक्षा के बल घिसट रहा है। शरीर पर पन्द्रह सालों की गर्मी-बरसात ने बुढ़ापा ला दिया है। अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ।

पिछले पन्द्रह सालों से मुझे यह कुछ भी पता नहीं कि साहित्य जगत् में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं और मेरी पहले की रचनायें कैसी बिक रही है? 'पपिहरा' भी प्रारम्भ किया था तो न जाने जिस कुशायत में कि युग बीते पर भी पूरा न हो सका।

यह भिखारी का जीवन ही मुझे प्रिय है। अब प्रकाशकों का दरवाजा खटखटाने की तमन्ना नहीं रही। फिर भी 'पपिहरा' को तो पूर्ण करना ही होगा। कलम घिसने का नशा मुझे अब तक है और शायद जिन्दा रहने तक यह नशा साथ नहीं छोड़ेगा।

खन्न! सामने बिछी हुई मैली रूमाल पर किसी दाता ने दो इकन्नियाँ एक साथ ही फेंक दी हैं।

सर उठाकर देखता हूँ तो एक बाबू!...वही बाबू, जो रोज इसी समय इसी रास्ते से गुजरते हैं और मुझे दो आने फेंक-जाते हैं।

इन बाबू की अवस्था अभी केवल पचीस के लगभग है। हाथ-पैर

से तन्दुरुस्त, चेहरा आकर्षक, वेष-भूषा आधुनिक—पता नहीं ये मुझ भिखारी बूढ़े पर क्यों इतनो ममता रखते हैं ?

दूसरे दिन बाबू बोल रहे हैं—'भिखारी !....तुम कब से भीख मांग रहे हो ?'

'दस-बारह साल से सरकार !...'

सुनकर बाबू कुछ सोचने लगे हैं। फिर पूछा है उन्होंने—'और उसके पहले क्या करते थे ?'

'रिक्शा चलाता था...' मैं कहता हूँ—'जवानी घोड़ा बनकर काट दी, अब बुढ़ापा भीख मांग कर बिता रहा हूँ मालिक !...'

'मुझे तुमसे बहुत ही सहानुभूति हो गई है...पहले-पहल जब तुम्हें देखा, तभी मेरा हृदय तुम्हारे प्रति न जाने क्यों सदय हो उठा। लेखक लोग युवक और युवतियों का एक ही दृष्टि में प्रेम हो जाना दिखाते हैं, मगर मेरा प्रेम तो तुम जैसे बूढ़े से हो गया है...' कहकर बाबू मुस्कराने लगते हैं।

लेखक शब्द सुनकर मैं चौंक पड़ता हूँ। सँभल कर कहता हूँ—'लेखक झूठे होते हैं मालिक !'

'तुम मेरे घर चलो भिखारी ! मैं तुम्हें हमेशा अपने पास रखना चाहता हूँ। जब तक तुम्हें देख नहीं लेता, हृदय में बेचैनी-सी छाई रहती है...'

उनके हठ के आगे मैं परास्त हो गया हूँ।

सो मैं उनके महल में आ गया हूँ। महल ही कहिये इसे—इतना बड़ा गगनचुम्बी मकान, साज-सजावट, नौकर-चाकर।

खाना खाने के बाद रात में दो घण्टे तक बाबू हमसे बातें किया करते हैं। दिन भर तो अपने काम में डूबे रहते हैं। हम लोगों में भिन्न-भिन्न विषयों पर बातें होती हैं। बाबू का स्वभाव बड़ा निर्मल है, मुंह देखने वाले शीशे की तरह ! वे मुझे अब आप पुकारते हैं।

'आपने अब तक मुझे अपने विषय में कुछ न बताया'—बाबूजी कह रहे हैं।

'मेरे विषय में जानकर क्या करोगे बेटा ? मैं आफत का मारा एक इन्सान हूं।'

'आपके मुख से बेटा की पुकार सुनकर कानों में शहद घुल उठती है....पता नहीं, आपने क्या जादू कर दिया है मुझ पर...उफ् ! कितना सुख मिलता है मुझे....दुख तो इतना ही है कि मैं किसी को पिता कह कर नहीं पुकार सकता....'

'क्यों ?...' मुझे आश्चर्य होता है।

'मैं लड़कपन में ही अपने घर से विलग हो गया। मारा-मारा फिर रहा था, तो इस कोठी के सेठ साहब ने मुझे पाला-पोसा, लिखाया-पढ़ाया। सेठजी को कोई सन्तान नहीं थी और उनकी मृत्यु के बाद मैं ही उनके धन का मालिक बना। भिखारी का बेटा ईश्वर की अनुकम्पा से राजा बन गया !...अपने पिता की मुझे याद है और यह भी याद है कि पिता की अकर्मण्यता से माँ और हम लोग कई-कई दिन तक भूखे रह जाते थे। एक दिन माँ से एक मामूली-सी बात पर रूठकर पिताजी कहीं चले गये। हम लोग भूखों मरने लगे तो मैं घर से भाग आया। यहाँ सेठजी ने मुझे सँभाला। दो साल बाद जब मैंने सेठजी से अपने माता-पिता और भाइयों की बात कही तो वे मुझे अपने साथ लेकर गांव तक गये। वहाँ पता चला कि माताजी परलोक सिधार गयीं। टूटा-फूटा घर भी कूड़े का ढेर बन गया था !....तब से यहीं हूं। पिता के लिए मेरे हृदय में प्रेम भी है और घृणा भी। उन्हीं के कारण माताजी की दुर्दशा हुई। मैं भी यहाँ न आ जाता तो न जाने कहाँ भटकता होता ? पुरुष अगर स्त्री-बच्चों का पालन न कर सके तो उसे डूब मरना चाहिए। मेरे पिता ने भी शायद यही किया होगा !...'

'......' मैं चुपचाप सुन रहा हूं। कलेजा धड़क रहा है। आँखें बोलने वाले के मुंह पर केन्द्रित हैं।

'एक दिन आपने कहा था कि लेखक झूठे होते हैं...मैं कहता हूं कि केवल झूठे ही नहीं, विश्वासघाती, हत्यारे तथा आलसी—सभी

कुछ होते हैं ये...मेरे पिता भी लेखक थे—आज भी उनकी पुस्तकें लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं...परन्तु हमारी तो हत्या ही कर डाली उन्होंने ।'

मेरा सर घूमने लगा है । आसमान के तारे आँखों के आगे नाचने लगे हैं । हृदय आंधी की गति सा ऊपर-नीचे हो रहा है । सहमी हुई आवाज में पूछता हूँ—'तुम्हारा नाम ?....'

'त्रिलोक है मेरा नाम....यह क्या ? आपको क्या हो गया है.... कानों में उँगली क्यों डाल लिया आपने ?....'

'कुछ नहीं त्रिलोक बाबू !....' कहता हूँ मैं—'आपकी कहानी सुनकर ही मुझे इतना दुःख हुआ है । मैं जरा बाहर टहलकर अपना चित्त शान्त कर लूँ...'

मैं बाहर आकर टहलने लगा हूँ । चाँदनी से सनी हुई ठण्डी हवा बदन में लगी हैं तो तबीयत कुछ ठिकाने हुई है ।

सोच रहा हूँ—यदि अपने बेटे को अपना परिचय दे दूँ तो जीवन भर आनन्द से रह सकता हूँ । बादशाह बनकर जिन्दगी गुजार सकता हूँ ।

मगर यह त्रिलोक तो अपने पिता से घृणा करता है । एक पिता के लिए यह कितनी लज्जा की बात है कि स्वयं उसका बेटा उसी के मुख पर उसे अपशब्द कहे ! सचमुच मुझे डूब मरना चाहिए ।

उफ् ! कितना अभागा हूँ मैं ! युगों के बाद अपने बेटे को पाकर भी उसे कलेजे से नहीं लगा सकता, उसे यह नहीं बता सकता कि मैं ही उसका पिता हूँ ।

कितनी विडम्बना है ! सुख के दिन आये भी, तो दामन में हजार-हजार बिच्छुओं के डंक छिपा कर ।

● ●

रसूल आज जेल में है। अभी थोड़े ही दिन हुए मैं उसे यहाँ आये। खुले मैदान में दहाड़नेवाला शेर जेल के अन्दर बकरी बनकर नहीं रह सकता, अतः लगभग प्रतिदिन ही उसे वार्डर-जेलर आदि के डण्डे खाने पड़ते। चार दिन तक उसे बेड़ी पहनाकर काल कोठरी में भी रखा गया। रसूल जेल-जीवन से ऊब उठा है।

दिन तो किसी तरह चक्की चलाते-चलाते बीत जाता। रात में वह जब मिट्टी के चबूतरे पर काला कम्बल बिछा कर सोता तो थके हुए अंग टूटने लगते और नींद हराम हो जाती। जब नींद न आती तो मस्तिष्क के घोड़े तीव्र गति से दौड़ पड़ते। जाने कहाँ-कहाँ की बातें वह सोचने लगता।

पपिहरा की याद आती, तो क्षण भर के लिए उसे प्रसन्नता होती कि वह अपने पिता के पास पहुँच गई है। आनन्द से रहती होगी। दुःख तो किसी बात का न होगा।

परन्तु चाँदनी। वह मासूम बच्ची, जिसे वसीदा बूढ़ी के हाथों वह सौंप आया था, कैसी होगी! अब तो साफ बोल भी लेती होगी। वसीदा उसे अच्छी तरह से रखती होगी। दूज का चन्द्रमा धीरे-धीरे तीज चौथ पार कर रहा होगा। तभी रसूल के हृदय न एक हूक-सी, एक ज्वाला-सी उठ खड़ी होती। उसका एक-एक रग चीत्कार से भर उठता। जाने कैसी आशंका से विह्वल हो उठता। शायद चाँदनी बीमार हो, शायद मर गई हो।

उफ्! वह कैसी बातें सोचने लगता है। वह अपना माथा ठोंकने लगता, परन्तु दुःख का आवेग कम न होता। धीरे-धीरे उसे यह निश्चय होने लगा कि चाँदनी पर अवश्य ही कोई संकट आ पड़ा है।

अब वह भागने की सोचने लगा।

और एक रात! जबकि सारे कैदी थकावट की नींद में मस्त थे,

रसूल धीरे से उठा और खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। वार्डन दरवाजे पर बैठा ऊँघ रहा था। जेल के बाहर किसी स्थान पर कुत्ते भौंक रहे थे। रसूल ने खिड़की में लगी हुई लोहे की सलाखों का निरीक्षण किया। फिर एकाएक उसने जमीन पर पैर की ठेस लगाकर हाथों से सलाखें पकड़ ली और भरपूर जोर मारा। दैत्य की ताकत के आगे लोहा परास्त हो गया।

चार सलाखें निकलते ही रसूल बाहर! अब केवल जेल की दीवारें लाँघनी बाकी थीं। तभी ऊँघते हुए वार्डर को कुछ खटका हुआ। वह बन्दूक लिए उठ खड़ा हुआ। रसूल चहारदीवारी की ओर दौड़ा। वह जानता था कि खतरा सर पर है और यदि वह भाग न सका तो उसकी सजा बढ़ जायगी और जेलर आदि तो शायद उसे अधमरा ही कर दें।

रसूल में इस समय पाशविक शक्ति आ गई थी। वह उछला और एक ही छलांग में उसने ऊँची चहारदीवारी की मुँडेर पकड़ ली। अब वह हाथों की शक्ति से अपने शरीर को मुँडेर पर लाने का प्रयत्न करने लगा।

तभी...धाँय! वार्डर की गोली रसूल के कन्धे में आ घुसी। उसका शरीर लड़खड़ाया, परन्तु मुख से चीख नहीं निकली। वह मुँडेर पर पहुँच चुका था। धड़ाक से उस पार कूद पड़ा।

पैरों के नीचे से मीलों की दूरी भागती रही। कई मील जाकर पीड़ा से रसूल जमीन पर गिर पड़ा! अपने को घसीटकर वह एक पेड़ के नीचे ले गया और सुस्ताने लगा। मुँह से दर्द की कराह निकलने लगी।

रक्त बहता जा रहा था। रसूल ने अपनी कमीज उतारकर चीर डाली और काँपते हाथों घाव पर पट्टी बाँध ली। रात का समय था। रसूल किसको दिखाते अपना घाव?

वह वहीं पेड़ के नीचे रात भर तक पड़ा रहा। सबेरे की हल्की आभा में जब आकाश के तारे टिमटिमा कर बुझने लगे, तो वह

उठा और फिर चलने लगा। शीघ्र ही रसूल किसी गाँव में पहुँच गया। उसकी पोशाक देखकर गाँववाले क्या समझते कि वह फरार कैदी है। एक दयालु ने उसे धोती और एक कमीज दे दी, जिसे पहनकर उसने कैदियों के कपड़ों से छुट्टी पाई।

पैदल चल-चलकर वह एक स्टेशन पर पहुँचा और वहाँ से रेलगाड़ी की यात्रा प्रारम्भ हुई। रेलगाड़ी में भी वह पीड़ा से बेचैन रहा। शरीर ज्वर से तप्त था। प्यास ने गले में काँटे लगा दिये थे। रसूल का हृदय कह रहा था कि अब वह जिन्दा नहीं रह सकता। मगर अभी मरेगा नहीं वह। चाँदनी को देखकर तभी उसका शरीर निष्प्राण होगा।

एक पहर रात गये वह वसीदा के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। पुकारा—'दादी !...'

दरवाजा खुला। बुढ़िया का शरीर दिखाई पड़ा। आवाज आई—'अरे तू है रसूल ?....आ बेटा, भला लौटा तो....'

दोनों अन्दर आए, दीवठ के प्रकाश में रसूल का मुख देखकर वसीदा चीख उठी—'या खुदा ! यह रसूल ही है या कोई मुरदा !.... तू तो एकदम से बदल गया है रे। चेहरे पर दाढ़ी क्यों उगा ली है ? हाय अल्लाह ! छोकरे का बरगद-सा बदन सूखकर ताड़ बन गया.... कहाँ था तू इतने दिनों तक ?....'

रसूल कराहता हुआ जमीन पर ही बैठ गया, बोला—'जरा दम लेने दो दादी !....'

'पपिहरा मिली तुझे ?....'

'हाँ !....'

'कहाँ है ?....'

'बम्बई में, अपने बाप के पास....'

'शुक्र है खुदा का !....' बुढ़िया से रसूल का बदन छुआ तो काँप कर बोली—'तुझे तो बुखार है रे हरामी ! कहाँ से मर कर आ रहा है, बोलता क्यों नहीं....'

'जेल से भाग कर आ रहा हूँ दादी !....'

'अरे बाप रे ! चोरी करके जेल जाना भी सीख लिया तू ?...' क्यों रे पिल्ले ! कमा कर पेट नहीं भर सकता था क्या तू ?....'

'मैंने चोरी नहीं की दादी !....पपिहरा की अस्मत बचाने के लिए मुझे जेल जाना पड़ा....जेल में तबीयत नहीं लगती थी....इसलिए वहाँ से भागा....कन्धे में गोली....' रसूल जमीन पर लेट गया।

'गोली !....' बुढ़िया आसमान पर से गिरती हुई बोली—'या खुदा ! तुझे क्या हो गया है रसूल !...'

'बड़ा दर्द है दादी !....थोड़ा-सा पानी पिलाना....'

'खायेगा भी कुछ ?....'

'नहीं दादी !....'

वसीदा उठकर एक गिलास पानी ले आई और रसूल के हाथों में पकड़ा दिया। रसूल गिलास होठों तक ले गया। एकाएक उसे चाँदनी की याद हो आई। उसने बिना पीए हुए ही गिलास जमीन पर रख दी।

'पीता क्यों नहीं ?....' बुढ़िया ने पूछा।

'दादी ! चाँदनी कहाँ है ?'

वसीदा का मुँह उतर गया। धीरे से बोली वह—'तेरी चाँदनी तो बदल कर शाम कर अँधेरा बन गई है रे रसूल !...मैं क्या करती ? तेरा कहीं पता भी नहीं था...'

'दादी !...' तेज स्वर में बोला रसूल और झटके के साथ उठकर बैठ गया—'कहाँ है चाँदनी, मुझे दिखाओ...चाँदनी को मैं शाम का अँधेरा बनते नहीं देखना चाहता...'

वसीदा ने खटोले पर लेटी हुई चाँदनी की चादर उठा दी। रसूल एकटक देखने लगा उसे। हृष्ट-पुष्ट शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा रह गया था। बदन का गोरा रंग अँधेरी रात का कालापन ले बैठा था। रसूल के पैर काँपने लगे। हाथ की मुट्ठियाँ बँध गईं।

'दादी !...' हताश स्वर में बोला वह—'तुम्हें गुलाब का फूल

सौंपकर गया था और तुम मुझे सूखी हुई पंखड़ी लौटा रही हो.... दादी ! तुमने मेरे साथ दगा की ।'

'अरे छोकरे ! मेरी जान ले ले तू, मगर तोहमत मत लगा...खुद तो जाने किस दोजख में मर रहा था—अकेली मैं क्या करती ?...'

'अभी यह जिन्दा है दादी ! मैं इसे लेकर शहर जा रहा हूँ... अभी, इसी वक्त....'

रसूल दरवाजे के बाहर आ गया। पगडण्डी पर बढ़ चला शहर की ओर। शहर पहुँचकर रसूल ने वैद्य-डाक्टरों का दरवाजा खट-खटाया। सबने यही कहा—'इसे लेकर बम्बई या कलकत्ता जाओ। यहाँ इसका ईलाज नहीं हो सकता...'

अन्त में रसूल बम्बई पहुँच ही गया। कन्धे की पीड़ा एवं ज्वर से स्वयं अधमरा हो रहा था, परन्तु इस समय उसके सामने केवल चाँदनी की रक्षा का प्रश्न था, जो उसकी गोद में लेटी हुई धीरे-धीरे साँस ले रही थी।

रसूल स्टेशन से बाहर आकर चौड़ी सड़क पर चलने लगा। पहला दवाखाना देखते ही वह उसमें घुस पड़ा। दवाखाने में बड़ी भीड़ थी। कैसे पहुँच सके वह डाक्टर तक ? किसी तरह वह कुछ और नजदीक पहुँचा, तो रोगियों से घिरे हुए डाक्टर दीपक पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसका शरीर काँप उठा। वह उल्टे पाँव लौट चला।

दूसरे दवाखाने में वह घुसा तो डाक्टर साहब दूर ही से चिल्ला पड़े—'भागो यहाँ से....मुझे अवकाश नहीं...उसे दूसरे डाक्टर के पास ले जाओ...'

रसूल लौट पड़ा। दरवाजे तक पहुँचा, तो पीछे से कम्पाउडर ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया, बोला—'दवा कराना चाहो, तो हाथ में हजार दो हजार लेकर आओ। जानते हो, डाक्टर साहब की फीस पचास रुपया फी घण्टा है।'

रुपया ?...हजार-दो हजार !...दवाखाने से जब रसूल बाहर निकला तो उसके कानों में यही शब्द गूँज रहे थे !...'

अब भी रसूल हार नहीं मानेगा। वह चाँदनी की मौत से लड़ेगा। वह चोरी करेगा, डाका डालेगा और हाथ में हजार-दो हजार लेकर डाक्टर के पास अवश्य जायगा...

रसूल का काला मुख और भी भयानक हो उठा। वह बढ़ चला सेठ रतनलाल की कोठी की ओर। सेठ की कोठी बिजली के प्रकाश में हँस रही थी। शहनाई की गतें बज रही थीं। बड़ी चहल-पहल थी। पपिहरा और दीपक की शादी थी आज।

सेठ रतनलाल बहुत व्यस्त थे। उनकी एकमात्र सन्तान प्रतिमा का विवाह था। नौकरों में भी प्रसन्नता छाई हुई थी। चारों ओर अजीब मस्ती थी, विचित्र उत्साह था।

दीपक और पपिहरा गठबन्धन में जकड़ दिये गए थे। भाँवरें पड़ रही थीं। पण्डित मन्त्रोच्चारण कर रहे थे। कैलाश हँसता हुआ पास ही खड़ा था।

सेठ रतनलाल कुछ रुपये निकालने के लिए कमरे में आए। सेफ खोलकर रुपया निकाला उन्होंने और उसे खुला ही छोड़कर वे कैलाश को रुपये देने चले गये।

वापस लौटे तो वे सन्न रह गये। उनके सेफ के पास एक दैत्य खड़ा था—काला-कलूटा। उसके एक हाथ में कपड़े की एक लम्बी-सी गठरी थी और दूसरे हाथ से वह सेफ में से नोटों की गड्डी निकाल रहा था।

नोटों की गड्डी लेकर जब वह दैत्य घूमा, तो उसकी दृष्टि सेठ रतनलाल पर पड़ी। सेठजी चिल्ला उठे—'रसूल!...चोर! डाकू!....'

रसूल करुण स्वर में बोला—'चिल्लाओ मत सेठजी! हजार-दो हजार तो तुम्हारे हाथ की मैल है। मुझे इन रुपयों से इस बच्ची की जान बचानी है।'

'दगाबाज! तू जेल से कैसे भाग आया....मैं अभी बुलाता हूँ.... पुलिस....पुलिस!...'

तभी सेठजी कि कई नौकर दौड़ते हुए आये।

चिल्लाये सेठजी—'यह पुराना डाकू है, इसे पीटो! मारो!...'

नौकरों की लाठियाँ रसूल की पीठ पर नगाड़ा बजाती रहीं। सेठजी पुलिस को बुलाने चले गये।

एकाएक रसूल में न जाने कहाँ का बल आ गया! वह तेजी से उठ खड़ा हुआ। नौकरों को धक्का देकर दूर गिरा दिया और भाग चला। नौकरों ने पीछा किया, मगर वह चक्कर देता हुआ निकल गया।

चाँदनी उसकी गोद में थी और रुपयों की गड्डी हाथ में।

उसी दवाखाने में वह पुनः घुसा। कम्पाउण्डर ने कहा—'आ गये तुम! रुपये लाए?'

रसूल ने चुपचाप रुपयों की गड्डी उसके हाथों पर रख दी।

डाक्टर ने चाँदनी की नब्ज देखी, स्टेथिसकोप से परीक्षा ली, नाक के पास शीशा रखा, तब धीरे से बोला—'यह मर गई....'

'मर गई?...' रसूल के मुख से केवल इतना ही निकला। आँसू की दो मोटी धारायें दोनों आँखों से निकलकर गालों पर बह चलीं।

उसने झुककर धीरे से लाश उठाई और कन्धे पर रखकर बाहर आया। वह बढ़ता रहा। एक-एक पग पर पैर जवाब दे रहे थे। शरीर असह्य ज्वर से तप्त था। सेठ रतनलाल की कोठी आ गई। रसूल पुनः उसी में घुसा।

सेठजी ने उसे देखा तो चिल्ला पड़े—'पकड़ो! फरार कैदी!....'

रसूल सेठजी के सामने जा खड़ा हुआ—'अब मैं भागूँगा नहीं सेठजी! शौक से बुलाओ पुलिस को....मैं खड़ा हूँ...' रसूल ने चाँदनी की लाश जमीन पर रख दी।

'भैया!....' पपिहरा आकर खड़ी हो गई उसके सामने। दीपक और कैलाश भी आये।

मौत की छाया रसूल के मुख पर क्षीण मुस्कुराहट बनकर नाच उठी। अत्यन्त क्षीण स्वर में बोला वह—'पपिहा!....'

'रसूल भैया !....'

'तू तो खुश है न !....अपने बाप का बदला तूने मुझसे लिया, शाबास ! बेटी हो तो ऐसी ! मुझे मिटा दिया पपिहा तूने...मुझे क्या मालूम कि एक हैवान भी अगर किसी बच्ची को पालता है तो वह उससे मुहब्बत करता है....आखिरी वक्त में तुझे देख सका...यही मेरी खुशनसीबी है....मेरी बच्ची ! जहाँ रहो, फूलो-फलो। चांद की रोशनी और गुल की खुशबू सदा तुम्हारे पास हो...या खुदा...'

फटे पहाड़ जैसा रसूल पपिहरा के आगे गिर पड़ा। उसके हाथ पपिहरा के पाँव पर पड़े। पपिहरा चीखकर रसूल से लिपट गई।

उसी समय पुलिस इन्सपेक्टर ने सिपाहियों के साथ वहाँ प्रवेश किया।

'कहाँ है वह ?....' पूछा उन्होंने।

'आपका कैदी तो भाग गया इन्सपेक्टर साहब !...' दीपक रुँधे गले से बोला—'आप अब उसे नहीं पकड़ सकते....'

इन्सपेक्टर ने चाँदनी की लाश खोली तो सभी चौंक पड़े।

'यह किसकी बच्ची है ?...' इन्सपेक्टर ने पूछा।

परन्तु कोई उत्तर नहीं दे सका।

पपिहरा एकटक उसे देख रही थी। जबान चुप थी। मगर उसके दिल की एक-एक धड़कन कह रही थी कि पपिहरा से निराश होकर रसूल ने उसकी बच्ची से अपना दिल बहलाना चाहा और जब वह भी धोखा दे गई तो वह जिन्दा न रह सका।

• •

बूढ़ा शरीर, पिछले दो हफ्तों से बुखार एवं खाँसी से तप रहा है। शरीर शिथिल होते-होते एकदम निर्जीव-सा हो गया है।

डाक्टर ने मुझे कोई भी परिश्रम करने से मना किया है। शाम को त्रिलोक ने देखा था—ज्वर १०४ डिग्री था। फिर भी लिखने का नशा चढ़ा तो 'पपिहरा' को सम्पूर्ण करके ही उतरा।

यह 'पपिहरा' मेरी युगों की साधना का परिणाम है। जवानी में इसे लिखना प्रारम्भ किया था और बुढ़ापे में आकर यह पूर्ण हुआ।

उफ्! कितना कष्ट है मुझे इस समय! चारपाई पर बैठे-बैठे मैं कराहने लगता हूं। तभी—'अरे आप अभी तक जाग रहे हैं?' त्रिलोक का स्वर सुनाई पड़ता है—'आप कराह रहे हैं, पीड़ा अधिक है क्या?...लाइए बुखार देखूं...'

थर्मामीटर ने कहा है कि मुझे १०४।। डिग्री का ताप है।

त्रिलोक कहता है—'आप लेट जाइये। मैं आप के सीने पर अमृताञ्जन मल दूं।'

मैं लेट जाता हूं चुपचाप। त्रिलोक मेरे सीने पर दवा मल रहा है और मैं उसका सलोना मुख एकटक देख रहा हूं। यह त्रिलोक अनजाने में ही अपने पिता से कितना प्रेम करने लगा है। मगर कैसे बताऊं इसे कि मैं ही...मैं ही...

तब तक—'लाइये आपका बदन दबा दूं' कहता है त्रिलोक!

'रहने दो बेटा! बूढ़ा शरीर तो हमेशा ही दर्द करता रहेगा-तुम कब तक परेशान होगे?....'

परन्तु त्रिलोक सुनता नहीं। मेरा हाथ पकड़कर दबाने लगा है वह।

एकाएक त्रिलोक चौंक पड़ा है। मेरी कांख के नीचे के काले निशान को वह बड़े ध्यान से देखने लगा है। व्यग्र होकर अपना हाथ नीचे कर लेता हूं।

वह मेरी छाती पर अपना सिर रख देता है। आंखों में आंसू भरभरा उठते हैं। कहता है—'बहुत दिनों तक छिपे रहे पिताजी!... नजरों के सामने रहते हुए भी पहचान से दूर रहे.. मुझे इतना बड़ा दण्ड आपने क्यों दिया?....मैं आपकी कांख का यह निशान अच्छी तरह पहचानता हूं...'

'बेटा!...' मेरे रुंधे गले निकला है और शिथिल हाथों ने बेटे के शरीर को अपनी बूढ़ी ठठरी से बांध लिया है।

आधे घण्टे बाद बहुत कहने-सुनने पर त्रिलोक सोने चला गया है। मैं भी सोने का उपक्रम करता हूँ, परन्तु नींद ने तो मजदूरों की तरह हड़ताल करना सीख लिया है।

तेजी से उठकर मैं चारपाई पर बैठ जाता हूँ। कलम उठाकर कागज पर लिखने लगता हूँ—

बेटा!

मैं तुम्हारा पिता हूँ और तुम मेरे बेटे। परन्तु हम दोनों में से किसी ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। मैं तुम्हें पाल-पोस नहीं सका और तुम पिता का आदर करना नहीं सीख सके। बाप की अकर्मण्यता एवं सन्तति के पालन की अक्षमता हेय है तो पुत्र के मुख से पिता के लिए निकले हुए अपशब्द कम घृणित नहीं।

तुमने इतने दिनों तक मुझे आराम से रखा, इसका बदला बगैर चुकाए मैं यहाँ से जाना नहीं चाहता। मेरे पास धन नहीं, केवल 'पपिहरा' की हस्तलिपि है। उसे तकिए के नीचे से निकाल लेना और किसी प्रकाशक के हाथ बेंचकर अपने रुपये ले लेना।

पत्र मोड़कर तकिये के ऊपर रख देता हूँ और उठ खड़ा होता हूँ। लड़खड़ाते पैर लिए बाहर आ गया हूँ। निकल पड़ा हूँ मौत की मञ्जिल तक पहुँचने के लिए।

× × ×

आज चौथा दिन है मुझे इस स्टेशन पर पड़े हुए। सोचा था किसी गाड़ी पर चढ़ कर कहीं दूर चला जाऊँगा, परन्तु यहाँ पहुँचते ही ज्वर और खाँसी ने ऐसा जमीन पर ला पटका कि फिर उठ ही न सका।

एक गाड़ी आकर प्लेटफार्म पर खड़ी हो गई है। एक साहब उतरकर बाहर की ओर जाने लगे हैं। मैं उन्हें पहचान गया हूँ। पुकारता हूँ—'श्यामसुन्दरजी!...'

वे नजदीक आते हैं तो मुझ भिखारी को देखकर चीख पड़ते हैं—'अरे राजाबाबू तुम!'

'मैं ही हूँ श्यामसुन्दरजी !....कहिए क्या हाल है ?...'

'राजा बाबू ! आज तुम्हारा साहित्य अमर हो गया है। तुम्हारे मस्तिष्क की कद्र लोगों ने बहुत देर से करना सीखा। साहित्य में तुम्हारी रचनाओं का सबसे उच्च स्थान है। सब तुम्हें मरा हुआ समझ लिए हैं और तुम्हारी पुस्तकों में तुम्हारे नाम के आगे 'स्वर्गीय' छपने लगा है।'

'ठीक ही है ! इन्सान की कद्र उसकी मृत्यु के बाद ही होती है श्यामसुन्दरजी ! मैं भी तो मर गया हूँ....'

'राजा बाबू ! तुम मेरे साथ चलो...लोग तुम्हें देखकर बहुत हर्षित होंगे, तुम्हारी उपासना करेंगे, तुम्हारी एक-एक रचना पर प्रकाशक हजारों रुपयों की वर्षा कर देंगे....'

'तुम जाओ श्यामसुन्दरजी ! मुझे प्रशंसा एवं धन की लालच मत दो....सरस्वती की उपासना करने वाला किसी के समक्ष झुकता नहीं...जाओ, तुम चले जाओ...'

बेचारे श्यामसुन्दरजी भीगी बिल्ली बन गये हैं। मेरी तड़प सुनकर धीरे से अपना सूटकेस उठाकर चल दिए हैं।

मैं उठता हूँ। शिथिल पैर रेलवे लाइन के किनारे-किनारे चलने लगे हैं। बड़ी दूर आकर एक सुनसान स्थान में मैं रुक गया हूँ।

शाम का धुँधलका ! चारों ओर सन्नाटा ! हृदय में तूफान ! मस्तिष्क में पागलपन ! मैं क्या करने जा रहा हूँ ?

धड़धड़-धड़धड़ ! दूर से रेलगाड़ी के पहियों की आवाज !

मैं दोनों लाइनों पर लेट जाता हूँ धीरे से।

आओ काली माता ! मेरे शरीर के टुकड़े करो....'

ॐ नमश्चण्डिकाय !

॥ बस ॥